सत्याग्रह आश्रमका अितिहास

लेखक
मोहनदास करमचंद गांधी
अनुवादक
रामनारायण चौधरी

२४३

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर
अहमदाबाद

अग्निसंभव

जब जब पू० बापूजी जेल जाते, तभी हम अुनसे कुछ न कुछ लिखनेकी माँग किया करते थे। अेक बार मैंने अुनसे अेक धार्मिक पाठमालाकी माँग की। अुसके बजाय पू० बापूजीने कोअी तरह पाठोंकी बालपोथी तैयार कर दी। मगर अिसके पीछे जो कल्पना थी, अुसे समझाकर अुन्होंने कहा कि यह कल्पना मंजूर हो, तभी बालपोथी छपाअी जाय।

बापूजीकी कल्पना अितनी ज्यादा क्रान्तिकारी थी कि हम कोअी अुसे मंजूर न कर सके और यह बालपोथी अभी तक बगैर छपी ही रही है।

और अेकबार अुनसे मैंने कहा—"आपने 'आत्मकथा' लिखी है। 'दक्षिण अफ्रीकाका अितिहास' भी लिखा है। अब हमें सत्याग्रह आश्रमका अितिहास दीजिये। आप कअी बार कहते हैं कि सफर करते करते जब श्रद्धाका सम्बल खतम हो जाता है, तब आप फिरसे नअी प्रेरणा लेनेके लिअे आश्रममें आते हैं। हममें तो अैसी कोअी बात नहीं है कि हम आश्रमवासियोंसे आपको कुछ कुमक मिले। अुल्टे, हम अपने छोटेपनके कारण आपको अक्सर परेशान करते हैं, और आपके आश्रम आनेकी राह देखते हैं। आश्रमका आदर्श और अिस प्रयोगके पीछे रहनेवाली श्रद्धा आपको सचमुच नयी नयी प्रेरणा देती होगी। अिसलिअे यह सब हमें तफसीलवार लिखकर दीजिये। आश्रमको चलाते हुअे हमारे कारण आपको जो तकलीफ होती है, हमारे दोषोंके सबबसे आश्रमके विकासमें जो रुकावट आती है, वह सब

बिना सकोचके आप लिखियेगा। हमपर दया न करें। सत्याग्रह आश्रम वर्तमान भारतका अेक अद्भुत् धार्मिक-सामाजिक प्रयोग है। यह राजनीति और अर्थनीति दोनोंमें क्रान्ति करनेवाला है। अिसका सच्चा और मुफस्सिल बयान दुनियाके सामने आना ही चाहिये। आप ही ने तो 'आत्मकथा' में लिखा है कि, 'भले ही मेरे जैसे कअी फना हो जायँ, मगर सत्यकी जीत हो। अल्पात्माको नापनेके लिअे सत्यका गज कभी छोटा न बने।' यही न्याय हमपर लागू करके आश्रमका अितिहास आनेवाली सन्तानोके लिअे लिख दीजिये।"

अुन्होंने जो जवाब दिया, अुसका सार था.

"हो सका तो जरूर लिखूँगा। मगर सच पूछा जाय तो यह काम आप सबका है। यह प्रयोग आप लोगोंके जरिये हो रहा है। आपको ही अिसका अितिहास लिखना चाहिये।"

जब वे जेलसे बाहर आये, तब टुकड़े टुकडे लिखा हुआ और बिलकुल अधूरा अितिहास लेकर आये। अुनका लिखना अेकसा नहीं था। अुन्होंने कहा—"यह काम पूरा नही कर सका। दुबारा जॉच लेनेकी जरुरत तो है ही। यह भी नहीं जानता कि अधूरा लिखा हुआ पूरा कर सकूँगा या नहीं। जैसा है वैसा छापने लायक हालतमें नही है। सुधार करनेके बाद ही दूँगा।" मैने कहा—"भले ही, मगर जो अभी है, अुसकी नकल करा लूँगा।"

मैने हाथका लिखा तुरन्त ही ले लिया। और श्री मगनभाअी देसाअीसे अुसकी तीन् चार नकलें करा लीं। अेक नकल पूनेमें प्रो० जयशंकरभाअी त्रिवेदीके पास रख दी। दूसरी श्री मगनभाअीने विद्यापीठमे रख ली। तीसरी मैने 'नवजीवन' को दी होगी। यह तलाश करना है कि मूल रचना अब कहाँ है, किसके पास है? अिस रचनापर अुनका हाथ फिरे सो बात तो

अब रही नहीं । पूरी तो हो ही रहेगी ! अिसलिअे जैसी है वैसी ही अेक बार जनताके सामने रख देनेका निश्चय किया गया है ।

आश्रमकी प्रवृत्तियाँ जैसे बढ़ती गयीं, अिसका अच्छा खासा अितिहास अिन प्रसंगोंमें मिलता है । आश्रमकी प्रार्थना, हमारा सम्मिलित रसोअीघर, पाखानेकी सफाअी, खादीका काम, खेती, गोशाला, रातको आनेवाले चोर और अुनके लिअे पहरा, आश्रममें होनेवाली शादी-गमी वगैरा अनेक प्रसंग जितने दिलचस्प हैं, अुतने ही हिन्दुस्तानके नवनिर्माणके खयालसे महत्त्वके हैं ।

सन् १९१५ में सत्याग्रह आश्रमकी स्थापना करनेसे पहले गांधीजीने आश्रमकी रचना लिख डाली और अुसके दो तीन नाम सुझाकर अेक गश्ती चिट्ठी हिन्दुस्तानके कअी विचारकों, सेवकों और नेताओंके नाम भेज दी थी । अुसके साथ आश्रमके व्रतोंका विवेचन भी भेजा था । अिन ग्यारह व्रतोंमें सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय और अपरिग्रह — ये पाँच व्रत योगमार्गमें यमोंके नामसे पुकारे जाते हैं । वैदिक ही नहीं, बौद्ध, जैन वगैरा सभी परम्पराओंमें अिन यमोंका महत्त्व बताया गया है । राजनीतिक स्वराज्य लेनेके लिअे और सामाजिक सुधारके जरिये कअी धर्मोंवाली भारतीय जनताके अुद्धारके लिअे चलाये जानेवाले आश्रममें यमोंका यह सुधरा हुआ संस्करण फिरसे प्रगट हुआ देखकर पुराने और नये सभी विचारके लोगोंको आश्रमके बारेमें कुतूहल और आदरकी भावना पैदा हुअी ।

आश्रमके अिन व्रतोंका विवेचन या भाष्य गांधीजीने सन् १९३० में यरवडा जेलसे हर मंगलवारको सुबह लिख लिखकर भेजा था । वह 'मंगल प्रभात' के नामसे मशहूर है ।

मगर यह सारा विवेचन तात्त्विक था। अिन व्रतोंके पालनमें आनेवाली मुश्किलें और अुनसे विकास पानेवाली विचाधारा आश्रमके अिस अितिहासमें ही मिल सकती है। सत्यका व्रत पालने और पलवानेमें आनेवाली कठिनाअियोंके कारण जो सवाल पैदा हुअे, अुनका हाल अिस अितिहासके 'प्रायश्चित्त' और 'अुपवास'— अिन दो प्रकरणोंमे जितना विस्तारसे आया है, अुतना गाधीजीकी रचनाओंमे और कहीं नहीं आया।

अछूतपन मिटानेके लिअे आत्मशुद्धिका वातावरण जमानेमें गाधीजीको आश्रममें ही कितनी मुश्किल हुअी, अुसका जो दर्दभरा और अूँचे दर्जेका चित्र 'आत्मकथा' मे है, अुससे कहीं ज्यादा अच्छे ढंगसे यहाँ आया है। यह सारा प्रकरण निहायत सयमके साथ लिखा हुआ होनेसे अिसकी तेजस्विता हमारा ध्यान ज्यादा खींचती है।

स्वदेशी व्रतका विकास कैसे होता गया, अिसका छोटासा अितिहास यहीं सिलसिलेवार मिलता है।

आश्रमकी स्थापनाके साथ, आश्रमके अन्दर ही, मगर अेक स्वतंत्र सस्थाके तौरपर, बापूजीने शिक्षाका अेक प्रयोग किया। अिस प्रयोगके करनेवालोंने आश्रमका वातावरण अपनाया था। मगर आश्रमके व्रत और नियम कडाअीके साथ पालना अुनके लिअे लाजिमी नही था। अेक ही वातावरणवाली और अेक ही बापूजीकी प्रेरणासे चलनेवाली दो सस्थाओंका जीवन अलग हो नहीं सकता था और अेक दूसरेको निबाह लेनेकी कलाका हम विकास नहीं कर सके थे। नतीजा यह हुआ कि हम दोनों तरफवालोंने पू० बापूजीको जितना क्लेश पहुँचाया, अुतना शायद ही और किसीने पहुँचाया होगा। अुद्धव और अक्रूरके झगडेसे जो हालत

श्रीकृष्णकी हुआी और जो अुन्होंने खुद नारदके सामने बयान की है, वही हालत पू० बापूजीकी हुआी थी। हमको अिशारा भी अिस अितिहासमें मिलता है। और अुसीके साथ शिक्षाके बारेमें अुनके जो विचार सन् १९३२ में बने थे, वे भी अुन्होंने यहाँ दिये हैं। अिन विचारोंमें बुनियादी तालीमका प्रारम्भिक स्वरूप हमें देखनेको मिलता है। यह अेक बड़ा लाभ है।

हमें कहना चाहिये कि ये सारे विचार पाठशालाके शिक्षकोंको पूरी तरह मंजूर थे। अिस बारेमें जरूर मतभेद था कि कुछ सिद्धान्तोंपर कितना जोर दिया जाय और दो तीन तत्त्वोंमें समन्वय कैसे किया जाय। मगर असल मुश्किल, दोनों संस्थाओंको चलाते हुअे व्यवस्थाके सिलसिलेमें थी। अुस वक्तके अिस शिक्षा सम्बन्धी था, जैसा पू० बापूजी कहा करते थे, आध्यात्मिक झगड़ेसे ही वर्धा-योजनाका स्वरूप तय हुआ और बापूजी अिस फैसलेपर पहुँचे कि राष्ट्रीय महत्त्वके ग्राम-अुद्योगोंके सिवाका काम शिक्षकोंके हाथोंमें सौंपना चाहिये और वह शिक्षाके तौरपर होना चाहिये।

सत्याग्रह आश्रमके अलौकिक प्रतिभाशाली संस्थापकके हाथों लिखा हुआ यह अितिहास थोड़ासा शुरू होकर रुक गया, यह दुःखकी बात है। सत्याग्रह आश्रम छोड़कर, साबरमती छोड़कर, वे जब वर्धा रहने आये, तब हम दो तीन आश्रमवासियोंसे अुन्होंने कहा था कि सत्याग्रह आश्रमसे हमने जिस सामुहिक आध्यात्मिक जीवनका विकास किया था, अुसके सिलसिलेमें समय समयपर बनाये, बदले और सुधारे हुअे नियमोंका संग्रह कीजिये और तफसीलवार लिख डालिये। यह आश्रमकी यादगारके रूपमें काम आयेगा। जिनके लिअे मैंने कोअी पचास शीर्षक तैयार करके बापूजीको बताये थे। अुन्होंने कहा कि अिनमें सब कुछ आ जायगा। लेकिन

मै अभी तक प्रार्थनाके अेक प्रकरणके सिवा ज़्यादा न लिख सका। औरोंने भी अिस दिशामें अभी तक कोअी शुरूआत नहीं की। श्री जुगतराम भाअीने 'आत्मरचना या आश्रमी शिक्षा' के नामसे अेक विस्तृत पुस्तक लिखी है, मगर अुसका अुद्देश्य दूसरा है।

आश्रमके कामसे मुक्त करके बापूजीने जब मुझे गूजरात विद्यापीठ चलानेके लिअे वहाँ भेजा, तबसे (सन् १९२७) आश्रमकी प्रवृत्तियोंसे मेरा सम्बन्ध कम हो गया। फिर तो यह कल्पना करके कि सुबह-शामकी प्रार्थना और साबरमतीके किनारेकी अुसकी जगह ही सत्याग्रह आश्रम है, आश्रमकी तमाम प्रवृत्तियोंको अुद्योग-मन्दिरका नाम दे दिया गया। और सन् १९३३ की लडाअीके अन्तमें किसानोंको परेशान करनेवाली सरकारी नीतिके विरोधमें बापूजीने आश्रमका सदाके लिअे विसर्जन कर दिया, और अिस वीरान आश्रमपर सरकारको कब्जा करते न देखकर, अठारह साल तक चले हुअे आश्रमकी तमाम स्थावर सम्[illegible] [illegible]नसेवाके काममें अर्पण कर दी। आज अिस आश्रम[illegible] लडकियोंका अेक छात्रालय चल रहा है [illegible]र ही, मगर अेक अच्छीसे अच्छी बुनियादी तालीम दी जा रह[illegible] प्रयोग किया।

सत्याग्रह आश्रमके विसर्जनके बाद स्व० जमनालालजीकी प्रेरणासे स्थापित गांधी सेवासंघका खास तौरपर विकास हुआ। अिस संस्थाका अुद्देश्य गांधीजीके सिद्धान्तोंको माननेवाले हिन्दुस्तान भरके तमाम सेवकोंके कामकाजका संगठन करना और अुन्हें जरूरी मदद पहुँचाना था। यह काम पाँच सात साल तक जोरशोरसे चला। कअी राजनीतिक और भीतरी कारणोंसे सन् १९४० के शुरूमें अिस संघका विसर्जन करना पडा।

हिन्दुस्तानके आज़ाद होनेके बाद और अुसके साथ ही हिन्दुस्तानके टुकड़े हो जानेके बाद देशकी सारी स्थिति बदल गयी है। गांधीजीके अुसूल और अुनके चलाये हुअे रचनात्मक काम दोनोंको हिन्द सरकारने अेक हद तक अपनाया है और अिन्हीं अुसूलों और जीवनक्रमको अपने जीवनमें थोड़ा बहुत अपनानेवाले लोगोंकी बड़ी संख्या सारे देशमें फैली हुअी है। सत्याग्रह आश्रम या गांधी सेवासंघसे वह बहुत विशाल हो गयी है। अब अुसे रास्ता बतानेके लिअे पू० बापूजी नहीं हैं, अिसलिअे अिन लोगोंने हाल ही में सेवाग्राममें जमा होकर अेक अहिंसा-परायण सर्वोदय समाज कायम किया है। बापूजीके तमाम रचनात्मक कामोंका भी अेक सर्वसेवासंघ जैसे ही किसी नामका अेक सार्वभौम संगठन तैयार हो रहा है। अिस तरह, दक्षिण अफ्रीकामें कायम हुअे छोटेसे फिनिक्स आश्रमका धीरे धीरे विकास होता जा रहा है। सर्वोदय समाजका अभी तो हिन्दुस्तानमें [illegible] हाथोंमें नौंगना [illegible] है। मगर यह माननेका कारण नहीं है [illegible] सत्याग्रह [illegible] जायगा। [illegible] लिखा हुआ [illegible] आश्रमजीवनकी कल्पना अेक युगप्रवृत्ति है। [illegible] सिद्ध नहीं होती तब तक अैसी युगप्रवृत्तिका विस्तार बढ़ता ही जायगा। विशाल जीवनव्यापी और सार्वभौम कल्पनाके पूरे होनेके लिअे अेक सदी लग जाय, तो अिसमें कुछ भी अनोखी बात नहीं।

फिनिक्स पश्चिमी देशोंके पुराणोंमें बयान किया हुआ अेक काल्पनिक पक्षी है। अिसकी अुत्पत्ति मामूली पक्षियोंकी तरह अण्डेसे नहीं होती। फिनिक्स अपनी पैदा की हुअी आगमें खुद जल मरता है, और अुसकी अिस चिता-भस्ममेंसे नया

फिनिक्स जन्म लेता है। दक्षिण अफ्रीकामें गांधीजीके कायम किये हुअे 'फिनिक्स सेटलमेण्ट'के बाद साबरमतीके किनारे कायम हुआ सत्याग्रह आश्रम, अुसके विसर्जनके साथ विकास पानेवाला गांधी सेवासंघ, अुसके बिखरनेके बाद और पू० बापूजीके बलिदानके बाद हिन्दकी आजादीके साथ जन्म लेनेवाला सर्वोदय समाज यह परम्परा भी अिस पौराणिक पक्षीके अग्निसंभव जैसी ही है। अिस हर अेक जन्मका अलग अलग सविस्तर अितिहास हमें मिलना ही चाहिये।

(२)

मौजूदा जमानेमें जब शारीरिक रोगोंकी तरह ही मानसिक रोग भी बढ गये हैं, तब अुनका अिलाज करनेवाले दोनों तरहके समर्थ डॉक्टर भी तैयार हो गये हैं। मानसिक रोगोंका अध्ययन और पृथक्करण करके अुनके अिलाज आजमानेवाले डॉक्टर कहते हैं कि मनुष्यजातिका मौजूदा मानस बहुत ही पेचीदा होता जा रहा है, अुसकी पेचीदगियाँ घटनेके बजाय बढती ही जा रही हैं। वे अब यह भी कहने लगे हैं कि अिस जटिलताको दूर करके मनुष्यके मनको नीरोगी और मजबूत बनानेकी शक्ति सिर्फ धर्ममें ही है। अिसलिअे लोगोंमें धर्मके प्रति श्रद्धा फिरसे स्थापित करनी चाहिये।

दूसरी तरफ, अितिहासका गहरा अध्ययन करनेवाले और अपने अपने देशोंको रास्ता बतानेवाले आजकलके नेता कहते हैं कि अिन्सानके मनको संकुचित करनेवाला और अुलटे रास्ते ले जाकर पागल बनानेवाला यदि कोअी भयंकर तत्व है तो वह धर्म ही है और धर्मके नामपर किये गये अत्याचारोंके लिअे मनुष्यको

पछतावा भी नहीं होता। अिसलिअे मनुष्य जातिको बचाना हो, तो धर्मका फंदा निकलनेमें ही खैर है'

रूसी क्रान्तिके प्रणेताओंने अितिहासका गहरा अध्ययन करके धर्मके बारेमें तीखी ही राय बनायी है। वे कहते हैं कि मनुष्यकी विचार शक्तिको कुंद बनाकर अुसे चाहे जैसी हीन दशामें भी सन्तोष माननेकी शिक्षा देनेवाला धर्म अफीमसे भी खराब चीज है। अफीमका नशा किसी वक्त बुद्धिको जाग्रत कर सकता है, मगर धर्मका नशा तो अपने पामर जीवनके लिअे अेक फिलसूफी बना लेता है और अुसीमें खुश रहता है। अिसलिअे मनुष्य जातिकी स्वतन्त्रता और अुसका गौरव कायम रखना हो तो धर्ममात्रका त्याग कर देना चाहिये।

हरअेक आदमी धर्मका अर्थ अलग अलग करता है। सच पूछा जाय तो धर्मके बुनकर अेक धर्मको अनेक बनानेवाले मन्दिरों, मान्यतायें, विधियाँ और रस्म मनुष्य जातिको छिन्न भिन्न और जड़-मूढ बनाती हैं। अैसे 'धर्म' का अभिमान करके मनुष्य भयंकर बनता है। लेकिन अिन सबको अनुप्राणित करनेवाला परम मंगलमय जो प्रधान धर्मतत्त्व है — जिसे अिस जमानेमें गांधीजीने परम धर्म कहा है — अुसके अभावमें आज दुनिया अँधेरेमें तड़प रही है। अिस परमधर्म तत्त्वको जनताकी जीवनकी तरह सामाजिक सम्बन्धोंमें भी दाखिल करनेकी गरजसे गांधीजीने आश्रमकी स्थापना की थी। हिन्दुस्तानके राजनीतिक नेताओंने गांधीजीकी स्वराज साधना तो आरम्भित कर ली लेकिन अुनके कायम किये हुअे आश्रमका धर्मजीवन पुराने जमानेके अेक फालतू सा जैसा मालूम हुआ। भले भलोंने खुल्लमखुल्ला अुसकी निन्दा कर डाली। अब जब कि अधिकारकी भूखसे प्रेरित हुअे लोगोंने स्वराज्य मिलते ही

या अुसके पहले ही छीना झपटी होती दिखाअी दी, तब लोगोंको लगता है कि राजनीतिक स्पर्धासे दूर रहनेवाले, रचनात्मक कार्यक्रममें लगे रहनेवाले, और देशमें दगा-फसाद होनेपर शान्ति-सेनाका काम देनेवाले समूहकी हमारे पास सुविधा होती तो अच्छा होता।

अेक तरफसे देखते हैं तो आश्रममें रहनेवाले लोग गाधीजीके आदर्श तक अूपर न अुठ सके। और दूसरी तरफ, राष्ट्रकी तेजस्विता और नैतिक पूँजीको बढानेवाले अिस प्रयोगका रहस्य बाहरके लोग पहचान न सके और गाधीजीकी यह कोशिश पूरी आजमाअिशके बगैर ही रुक गयी!

और फिर भी अठारह सालके अिस प्रयोगसे आजके जमानेके लिअे सीखनेको बहुत कुछ मिल सकता है।

जिस मनुष्य जातिकी बुद्धिका लगातार दो युद्धोंके कारण दिवाला निकल चुका है, वह तीसरे महायुद्धके खयालसे कॉप रही है। मगर वह युद्धको टालनेके बजाय अुसे बुलावा ही देती जा रही है। अिस युद्धसे बचनेके लिअे हम अहिंसक समाजकी स्थापना करनेका सकल्प कर चुके हैं, मगर हमें रास्ता नहीं मिल रहा है। अैसे समयपर पन्द्रह सालके आश्रम-जीवनके अनुभवके बाद गाधीजीका लिखा हुआ आश्रमका यह अितिहास हमारे लिअे कअी तरहसे प्रेरक साबित हो सकता है। गाधीजीने जैसे नियम बनाये और जैसे तजुर्बे किये, हूबहू वैसे ही फिरसे करने चाहिये, अैसा तो कोअी नहीं कहेगा। लेकिन सत्य और अहिंसाकी बुनियादपर समाजकी रचना करनी हो, तो सयम, अपरिग्रह और तपस्याकी साधनाको अपनाये बगैर खैर नहीं। सिर्फ अहिंसाकी दुहाअी देनेसे काम नहीं चलेगा। अहिंसाको सिद्ध करनेके लिअे सयम और अपरिग्रहका

विकास करना ही चाहिये। अिसके बगैर शुद्ध और निःस्वार्थ सेवा हो ही नहीं सकती।

हिंसाको माननेवाले समाजकी युद्ध-सेना शान्तिके दिनोंमें जिस किस्मकी पहलेसे तैयारी करती है, वैसी तैयारी अहिंसक समाजकी शान्ति-सेनाको पहलेसे नहीं करनी पड़ती। लेकिन अपने परायेका खयाल छोड़कर तमाम जनताकी जीवन-व्यापी सेवा दिन रात और बारहों महीने करते रहनेसे ही दंगोंमें लगी हुअी जनताको काबूमें लानेकी शक्ति अिस सेनामें आ सकती है। हिंसक सेना जब विरोधी पक्षके प्रति द्वेष करती हो, तभी पूरी बहादुरीसे लड़ सकती है। स्टालिनग्रेड जीतनेसे पहले रूसी सर्वाधिकारी स्टैलिनने अपनी फौजके जवानोंसे जोर देकर कहा था कि जर्मन लोगोंसे दिलोजानसे द्वेष करना न सीखोगे, तो तुम जीत नहीं सकोगे। अहिंसक सेनाकी बात अिससे ठीक अुलटी है। जो हमारे घरबार जला चुके हैं, हमारे बाल-बच्चोंको अुठा ले जा रहे हैं, अुन लोगोंका भी बुरा न चाहनेवाले सैनिक ही अहिंसक संग्राममें विजय प्राप्त कर सकते हैं। अिसके लिअे अपनेपर भरोसा होना चाहिये कि जैसे द्वेष पैदा किया जा सकता है वैसे ही अुपेक्षा और करुणासे शुरू करके मैत्री और मुदिता तककी 'आर्य भावनाअें' भी पैदा की जा सकती हैं। कठोर संयम तो दोनोंमें ही चाहिये, मगर अहिंसक सेनामें जीवन-शुद्धिकी विशेषता जरूरी है। (शिवाजी, क्रॉमवेल, रिचर्ड और हिटलर तक हिंसक युद्धके सेनापति भी मानते आये हैं कि हथियारोंकी लड़ाअियोंमें भी जीवन-शुद्धिसे बड़ी मदद मिलती है। अिस्लामके पैगम्बर मोहम्मद साहबने अपनी फौजसे लड़ाअीके पहले दिन अुपवास और प्रार्थना कराअी थी।)

अगर सचमुच अहिंसक समाजकी स्थापना करनी हो, तो शान्ति-सेनाका सगठन किये विना काम नहीं चलेगा, और अगर शान्ति-सेनाका दरअसल सगठन करना है, तो जैसा अिस कितावमे गाधीजी कहते हैं अुस तरहसे तप और संयम साधे विना काम नहीं चल सकता। "जहाँ समाजकी रचना अहिंसापर होती है, वहाँ गोला वारूदकी जगह तप और सयम लेते हैं। और अुन्हें काममे लेनेवाले सिपाही समाजकी रक्षा करते हैं। दुनियाने अभी तक अैसा धर्म अपनाया नही है। हिन्दुस्तानमे थोडा-बहुत अपनाया गया है, मगर व्यापक रूपमे अपनाया नहीं कहा जा सकता। अैसी अहिंसा व्यापक होनी चाहिये और हो सकती है। आश्रममें यह मान्यता रही है कि अुस पर समाजकी रचना हो सक्ती है और अिस मान्यताके आधार पर प्रयोग हो रहे हैं। अैसा कहा जायगा कि सफलता अभी तक तो थोडी ही मिली है।"

धर्मकी शाब्दिक चर्चा वारीकीसे करनेवालोंका सिलसिला हमारे देशमे अभी तक टूटा नही है। मगर प्रयोग करके अेक अेक सिद्धान्तको आजमाकर आगे वढानेवाले गिनतीके ही लोग हैं। यह अेक तरहसे अच्छा ही था कि गाधीजीका शास्त्रग्रन्थोंका ज्ञान नहीके वरावर था, क्योंकि सुनी हुअी सभी वातें अुन्होंने शुरूमे मामूली श्रद्धासे और आस्तिक बुद्धिसे मान ली थीं, वादमें अुन्होने अपना सारा जीवन अुंडेलकर अिन सव वातोंकी जाँच कर ली। अनुभवके अखीरमे जो वाते छोडने लायक मालूम हुअीं, अुन्हें हिम्मतके साथ निकाल देनेके लिअे अुन्होंने कमर कस ली और जो अिष्ट और कल्याणकारी जान पडीं, अुनके वारेमें अपना अनुभव और आग्रह दुनियाके सामने रखकर लोगोंको भी वैसा करनेके लिअे

तैयार किया और अिस तरह पुरानेमें जितना जीवन था अुसकी रक्षा करके अुसे नया रूप दिया और धर्मको जिन्दा बनाया ।

अब अगर अहिंसाके मार्गसे सीधी सादी कोशिशके बल मिली हुअी आज़ादी खो न बैठना हो, बल्कि अिस आज़ादीकी जड़ें मजबूत करके दुनियाकी सेवा करनेकी ताकत अपने देशमें लानी हो, तो गांधीजीका आश्रम-प्रवृत्तिका प्रयोग सारे देशको फिरसे हाथमें लेना चाहिये । अैसे आश्रम ग्राम अुद्योगोंसे तो गूँजते ही होने चाहियें, अिनसे भी ज़्यादा शिक्षाके वातावरणसे सुगन्धित होने चाहियें ।

अिस पुस्तकको भूतकालके अेक बोधप्रद प्रयोगके बयानकी हैसियतसे नहीं देखना चाहिये । मगर राष्ट्रपिताके द्वारा आनेवाले पाँच सौ वर्षोंकी राष्ट्रीय साधनाके लिअे किये गये अेक स्फूर्तिदायक प्रयोगके रूपमें अुसका अध्ययन करके अुसमेंसे तपबल प्राप्त करनेके लिअे अिस अितिहासका अध्ययन होना चाहिये । सन् १९३३ में जो प्रयोग, टूट गया था, वह कअी रूपोंमें, जगह जगह सारे देशमें फिरसे शुरू होना चाहिये । तभी हिन्दुस्तानका भी नया अभ्युदय होगा ।

काका कालेलकर

विषय-सूची

सत्याग्रह आश्रमका अितिहास

आश्रमका अर्थ यहाँ सामुदायिक धार्मिक जीवन है। आजकी दृष्टिसे पिछली बातोंको देखते हुअे मुझे अैसा लगता है कि अिस तरहका आश्रम मेरे स्वभावमें ही था। जबसे मैंने अलग घर बसाया, तभीसे मेरा घर

५-८-'३२

अूपरकी व्याख्याकी दो शर्तोंके मुताबिक आश्रम-जैसा बन गया था। क्योंकि यह कहा जा सकता है कि गृहस्थाश्रम भोगके लिअे नहीं, बल्कि धर्मके लिअे बना है। फिर अुसमें कुटुम्बियोंके सिवा कोअी न कोअी मित्र तो होता ही था। और वह या तो धार्मिक सम्बन्धके कारण आया होता था, या अुसके आनेके बाद अुस सम्बन्धको मैं धार्मिक बनानेकी कोशिश करता था। अिस तरह सन् १९०४ तक अनजाने ही चलता रहा। १९०४ में मैंने रस्किनका 'सर्वोदय'[1] पढ़ा और अुसका असर चिरस्थायी हुआ। 'अिण्डियन ओपिनियन'का कारखाना जंगलमें ले जाकर वहाँ मजदूरोंके साथ अिकट्ठा या कुटुम्बका-सा जीवन बितानेका मैंने निश्चय किया। सौ बीघा जमीन लेकर आश्रम बसाया। अुस वक्त तक भी अिस संस्थाको मैंने भीतर या बाहर आश्रमके रूपमें पहचानना नहीं सीखा था। धर्म अिसका अंग जरूर था, लेकिन जाहिरा मकसद खेती और सादी सफाअी और आर्थिक बराबरी वगैरा हासिल करना था। अिस वक्त ब्रह्मचर्यकी जरूरत न मालूम हुअी थी, न समझी ही। अितना ही नहीं बल्कि अिसके

विपरीत यह मान्यता रही थी कि सब साथी गृहस्थीका जीवन वितायेंगे और प्रजाकी वृद्धि होगी। फिनिक्स[2]का थोडासा अितिहास 'दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका अितिहास'में आ जाता है।

'अिसे हम पहला कदम समझें।

यह कहा जा सकता है कि दूसरा कदम सन् १९०६में अुठाया गया। अैसा कह सकते हैं कि सेवाका जीवन बितानेके लिअे ब्रह्मचर्यकी जरूरत अनुभवसे साबित हुअी। और तबसे फिनिक्सको मै जानबूझकर धार्मिक संस्थाके रूपमें मानने लगा और मेरे मनमें अुसका धार्मिक ढाँचा बनने लगा। राजनीतिक सत्याग्रहकी शुरूआत अिसी सालमें हुअी। अुसकी जडमें तो धर्म ही था। अुसका आधार सत्यरूप परमात्मापर अविचल श्रद्धा थी। यहाँ धर्मका कोअी संकीर्ण अर्थ न लिया जाय। 'धर्म'का अर्थ है अलग अलग नामोंसे पहचाने जानेवाले सब धर्मोंका अेक साथ संकलन करनेवाला और अुन्हें अेकरूप देखनेवाला परम धर्म।

१९११ तक अिस तरह चलता रहा। अितने बरसोंमें फिनिक्स संस्थाकी, अुसे आश्रमके रूपमें जाने बिना, आश्रमके तौरपर प्रगति हो रही थी, अैसा मै मानता हूँ।

१९११ में तीसरा कदम अुठाया गया। आज तक फिनिक्समें जो लोग स्थायी रूपसे रह सकते थे, वे वही थे जो छापाखानेके काममें आ सकते थे। मगर अब सत्याग्रहके कामके लिअे अेक अैसे आश्रमकी जरूरत जान पडी, जहाँ सत्याग्रही कुटुम्ब रह सकें, धार्मिक जीवन बिता सकें। अिस वक्त मै जर्मन मित्र कॅलनबॅक[3]के सपर्कमें आ चुका था। हम दोनो अेक तरहका आश्रम जीवन बिताते थे। मै वकालत

करता था और कॅलनबॅक अपना स्थापत्यका धन्धा करते थे। फिर भी हम अेक दूर और बिखरी हुअी बस्तीमें अैसा जीवन बिताते थे जिसे मात्रामें बहुत सादा कहा जा सकता था, और यथाशक्ति हमारा मन धर्ममें लगा रहता था। अनजानमें भूलें बहुत हुअी होंगी, मगर हम हर समय जड़ धर्मसे छूटनेकी कोशिश करते थे। बादमें जब सत्याग्रही कुटुम्बोंकी भीड़ हुअी, तब सबको अेक साथ रखनेकी जरूरत जान पड़ी। अिसलिअे कॅलनबॅकने ग्यारह सौ बीघा चौरस जमीन ली और वहाँ सत्याग्रही कुटुम्ब बसे। वहाँ पग पगपर धार्मिक सवाल खड़े हुअे और सारी संस्था धार्मिक दृष्टिसे चली। अिसमें हिन्दू, मुसलमान, अीसाअी और पारसी रहते थे। अिस कारणसे किसी भी दिन क्लेश या झगड़ा हुआ हो, अैसा मुझे बिलकुल याद नहीं। अिसी तरह यह बात भी न थी कि वहाँ रहनेवाले अपने धर्मके बारेमें ढीलेढाले थे। हममें अेक दूसरेके धर्मके प्रति आदर था और हम अेक दूसरेको अपने अपने धर्मके अनुसार चलने और आत्मविकास करनेकी प्रेरणा देते थे।

लेकिन अिस संस्थाको हम सत्याग्रह आश्रमके रूपमें नहीं पहचानते थे। अिसका नाम 'टॉल्स्टॉय फार्म' रखा था। कॅलनबॅक और मैं टॉल्स्टॉयके पुजारी थे, और अुनके बहुतसे विचारों पर अमल करनेकी खूब कोशिश करते थे। सन् १९१२ में यह संस्था सत्याग्रही-निवासके बतौर बन्द हो गयी और जिन जिन लोगोंके साथ साथ रहना था, वे सब फिनिक्स चले गये। टॉल्स्टॉय फार्मका अितिहास भी जिन्हें जानना हो, वे 'दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका अितिहास' देख सकते हैं।

६-४-'३२

फिनिक्स अब सिर्फ 'अिण्डियन ओपिनियन'के सिलसिलेमे कायम हुअी संस्था न रही, वल्कि सत्याग्रहकी सस्था वनने लगी । यह स्वाभाविक ही था, क्योकि 'अिण्डियन ओपिनियन'की हस्ती के लिअे भी वही जिम्मेदार थी । परन्तु यह फेरबदल अैसा वैसा नहीं था । फिनिक्स वासियोंका जीवन डाँवाडोल वन गया और अिस डाँवाडोल हालतमें सत्याग्रहियोंकी तरह अुन्हें भी स्थिरता खोजनेकी नौवत आयी । अिससे वे हारे नहीं । यहाँ भी मैने टॉल्स्टॉय फार्मकी तरह मिलेजुले रसोअीघरकी जरूरत महसूस की । कुछ अुसमे शरीक हुअे, कुछ नही हुअे । शामकी सामाजिक प्रार्थनाको दिनदिन ज्यादा स्थान मिलता गया और सत्याग्रहकी आखिरी लडाअीकी शुरुआत फिनिक्सवासियोंके हाथों हुअी । यह घटना १९१३में हुअी । १९१४में लड़ाअी पूरी हुअी और मैने जुलाअीके महीनेमें दक्षिण अफ्रीका छोड़ा । हिन्दुस्तान जानेकी जिन जिन लोगोंकी अिच्छा थी, लगभग अुन सभीका हिन्दुस्तान जाना तय हुआ । मुझे विलायत होकर गोखलेसे मिलकर जाना था । हिन्दुस्तानमें अलग सस्था कायम करके सबको साथ रखना था और दक्षिण अफ्रीकामें मैने जिस सामाजिक जीवनकी शुरुआत की थी, अुसे जारी रखना था । अिसलिअे आश्रमके नामके विना आश्रम कायम करनेका निश्चय करके मै १९१४ के अन्तमें हिन्दुस्तान पहुँचा ।

हिन्दुस्तानमें अेक वरस तक तो खूब घूमा, कितनी ही सस्थाअें देखी और अुनसे वहुत कुछ सीखनेको मिला । कितनी ही जगहोंसे वहाँ आश्रम स्थापित करनेके निमंत्रण मिले और कअी तरहकी मदद देनेके वचन मिले । अन्तमें अहमदावादमें आश्रम खोलनेका निश्चय किया । अिसे मै चौथा और आखिरी कदम मानता हूँ ।

यह आखिरी रहेगा या नहीं, यह तो भविष्यकी बात है। अिस संस्थाको क्या नाम दिया जाय, अुसके नियम क्या हों, अिस बारेमें मैंने मित्रोंके साथ अच्छी तरह चर्चा की, पत्रव्यवहार किया, नियमोंका मसविदा मित्रोंको भेजा और अन्तमें संस्थाका नाम 'सत्याग्रह आश्रम' रखा गया। अुद्देश्यको ध्यानमें रखनेसे ऐसा लगता है कि यह नाम ठीक ही था। मेरा जीवन सत्यकी खोजमें अर्पण किया हुआ है। अुसीकी खोजके लिअे जीनेका और जरूरत हो तो मरनेका आग्रह है। अिस खोजमें जितने साथी मिलें, अुतनोंको साथ लेनेकी भी अिच्छा है।

७-४-'३२

२२ मअी १९१५ को कोचरबमें किरायेके मकानमें यह आश्रम खुला। अुसके खर्चका बन्दोबस्त करनेका जिम्मा अहमदाबादके कुछ नागरिकोंने लिया। जब आश्रम खुला, तब लगभग बीस आदमी थे और अुनमेंसे ज्यादातर दक्षिण अफ्रीकासे आये हुअे थे। अुस वक्त अधिकांश दक्षिणकी तरफके यानी तामिल या तेलुगु बोलनेवाले हिन्दुस्तानी थे। अुन दिनों आश्रममें छोटेबड़े सबोंके लिअे खास काम भाषाअें सीखनेका यानी संस्कृत, हिन्दी और तामिल पढ़नेका था। बच्चोंके लिअे स्कूली साधारण पढ़ाअी थी। हाथ बुनाअी मुख्य अुद्योग था और अुसीके साथ पढ़ाअीका काम होता था। नौकर न रखनेका आग्रह था। अिसलिअे खाना बनाने, सफाअी करने, पानी भरने वगैराका सारा काम आश्रमवासी ही करते थे। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अस्तेय, अपरिग्रह वगैरा व्रत सारे आश्रमवालोंके लिअे लाजिमी थे। जातपांतका भेद बिलकुल नहीं रखा गया था। अछूतपनके लिअे आश्रममें बिलकुल गुंजाअिश नहीं थी। अितना ही नहीं, बल्कि हिन्दू जातिमेंसे अछूतपन दूर

करनेकी कोशिशको आश्रमके काममें महत्त्वका स्थान दिया गया था। और अछूतपनकी तरह ही हिन्दू जातिमेंसे स्त्रियोंके कितने ही बन्धन तोड़नेके बारेमें भी आश्रममें शुरूसे आग्रह रखा गया था। अिस-लिअे आश्रममें स्त्रियोंको पूरी आजादी रही है। साथ ही, हिन्दू, मुसलमान वगैरा अलग अलग धर्मके लोगोंमें जितना भाअीचारा आपसमें हो सकता है, अुतना ही आश्रममें भी रखनेका नियम हो गया।

लेकिन अेक चीजके लिअे मै ही जिम्मेदार हूँ। और अिसके लिअे मै पश्चिमका आभारी हूँ। ये है मेरे भोजन सम्बन्धी प्रयोग। अिन प्रयोगोंकी शुरुआत हुअी १८८८ में, जब मै विलायत गया था। अपने प्रयोगोंमें मै सदा अपने कुटुम्बियों और दूसरे साथियोंको घसीटता रहा हूँ। अिसकी जड़में तीन कारण मुख्य थे (१) स्वादेन्द्रिय यानी जीभपर और अुसीके जरिये दूसरी अिन्द्रियोंपर काबू करना, (२) सादीसे सादी और सस्तीसे सस्ती खूराक ढूँढ निकालना, ताकि अिस बारेमें गरीबोंके साथ होड़ की जा सके, (३) खुराकके साथ तन्दुरुस्तीका गहरा सम्बन्ध है, अिस विचारके आधारपर कौनसी खुराक पूरी तन्दुरुस्ती हासिल करनेके लिअे ठीक है, यह खोज निकालना।

कहनेका मतलब यह नहीं कि अिन तीन कारणोंकी वजहसे मै खुराकके प्रयोग करनेके लिअे ललचाया। अगर मै निरामिष भोजन करनेकी प्रतिज्ञा लेकर विलायत न गया होता, तो शायद खुराकके प्रयोग करनेकी बात मुझे सूझी ही न होती। लेकिन जब मुझे ये प्रयोग करने पड़े, तो ये तीन कारण मुझे बहुत गहरे पानीमें ले गये और मुझे कअी तरहके तजरबे करनेकी प्रेरणा हुअी। अिस तरह आश्रम भी मेरे खुराकके प्रयोगोंमें शामिल हुआ। मगर ये प्रयोग आश्रमके अंग नहीं हैं।

अिससे मालूम हो सकता है कि आश्रमने देश और
समाज सम्बन्धी जिन जिन दोषोंको माना, अुन्हें
८-४-'३२ आश्रममें दूर करनेकी अिच्छा थी। अिनमें धार्मिक,
आर्थिक या राजनीतिक सभी खराबियाँ शामिल
हैं। जैसे-जैसे अनुभव बढ़ता गया और प्रसंग आता गया, वैसे
वैसे नये नये काम शुरू होते गये। यह नहीं कहा जा सकता
कि आज यह लिखाते वक्त भी मेरे मनमें जितने काम हैं, अुन
सबको आश्रममें दाखिल किया जा सका है। शुरूसे ही अेक
दो निश्चयोंके अनुसार आश्रमका कामकाज चला है: (१) चादर
देखकर पैर पसारना, यानी आश्रमको सहज ही मित्रोंसे जितनी
आर्थिक मदद मिलती रहे, अुसी पर गुजर करना, (२) किसी भी
प्रवृत्तिके पीछे न दौड़ना, परन्तु जो योग्य काम अपने आप
आ पड़े अुसे बिना संकोच और, जरूरत हो तो, हर जोखिम
अुठाकर भी हाथमें लेना।

मैं मानता हूं कि अिन दोनों निश्चयोंके पीछे सिर्फ
धार्मिक वृत्ति है। धार्मिक वृत्तिका अर्थ है अीश्वरपर
श्रद्धा, — अिसलिअे सब कुछ अुसके आधारपर और अुसकी
प्रेरणासे करना। अिस तरह चलनेवाला आदमी अीश्वरके भेजे हुअे
धन (साधनों) के जरिये अुसीका बताया हुआ काम करता है।
अीश्वर खुद कुछ करता है, अैसा तो वह हमें देखने या जानने
देता नहीं। वह मनुष्यको प्रेरणा देकर अुसीके जरिये अपना काम
कराता है। और जब हमने खयाल भी न किया हो अैसी जगहसे
मदद आ जाय या बिना मांगे ही हमें मित्रोंसे सहायता मिल
जाय, तब तो मेरी श्रद्धा यह मानेगी कि वह अीश्वरकी तरफसे
भेजी गयी है। और अिसी तरह जो काम आ पड़े और जिसे

हाथमें न लेनेमें डरपोकपन, आलस्य या अैसा ही कोअी दूषित कारण मालूम हो, अुस कामको मेरी श्रद्धा अीश्वरका भेजा हुआ ही मानेगी।

और जो बात रुपये-पैसे और कामके बारेमें सच है, वही साथियोंके बारेमें है। रुपया हो, काम भी आ जाय, परन्तु साथीरूपी साधन न हो, तो भी वह काम हाथमें नहीं लिया जा सकता। यह साधन भी सहज ही मिलना चाहिये। जहाँ यह कल्पना ही नहीं बल्कि विश्वास है, समर्पण बुद्धि है कि आश्रम अीश्वरका है, वहाँ अीश्वर जिस जिस कामकी खातिर आश्रमको साधन बनाना चाहता है, अुसके लिअे सारा सामान भी वही भेज देता है। पिछले सोलह सालसे ही नहीं, बल्कि जबसे फिनिक्सकी स्थापना हुअी तभीसे जाने अनजाने, थोडे या बहुत प्रमाणमें, अिन्हीं नियमोंके अनुसार संस्था चलती रही है। जो नियम शुरुमें नरम थे, वे बादमें कडे होते गये हैं, और मेरी रायमें अब भी होते जा रहे हैं।

थोडे ही दिनोंमें आश्रमकी आबादी दुगुनी हो गयी। और कोचरबके बंगलेकी रचना तो आश्रमके अनुकूल हो ही नहीं सकती थी। बंगला तो बंगला ही ठहरा। अुसमें अेक धनिक परिवार पश्चिम और पूर्वके रहनसहनको मिलाकर रह सकता था। अैसी जगहमें स्त्री, पुरुष और बच्चे कुल मिलकर साठ आदमी, कअी प्रवृत्तियाँ चलाते हुअे और ब्रह्मचर्य वगैरा व्रतोंको पालते हुअे, मुश्किलसे ही रह सकते थे। लेकिन जो मकान मिला, अुसीमें गुजर करना था। फिर भी थोडे ही समयमें कअी कारणोंसे वहाँ रहना लगभग असम्भव हो गया। अिसलिअे, मानो अीश्वरने हमें वहाँसे निकाल दिया हो, अिस तरह हमें अचानक नयी

जमीनकी तलाश करनी पड़ी और बंगला खाली करना पड़ा। अिन घटनाओंका वर्णन 'आत्मकथा'में आ जाता है,' यहाँ दुहराता नहीं हूँ। कोचरबमें अेक कमी पहलेसे मालूम होती थी। वह साबरमती आनेपर दूर हुअी। फलोंके पेड़, खेती और पशुओंके बिना आश्रम अधूरा ही कहा जा सकता है। साबरमतीमें खेती करने जितनी जमीन है, अिसलिअे वहाँ खेती तुरन्त शुरू हो सकी।

यहाँ तक आश्रमके अितिहासपर अेक नजर डाली। अब व्रतों और नियमोंके बारेमें जो जो प्रश्न हुअे, अुनमेंसे जो मुझे याद हैं अुनका जिक्र करनेका विचार है। मेरा रोजनामचा मेरे पास नहीं। और अुसमें भी आश्रमवासियोंके जीवनकी नाजुक घटनाओंका हमेशा अुल्लेख नहीं किया गया है। अिसलिअे सिर्फ याददाश्तपर भरोसा करके यह अितिहास लिखा जा रहा है। मेरे लिअे यह प्रयोग नया नहीं है। 'दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका अितिहास' अिस तरह लिखा गया, 'सत्यके प्रयोग' भी अिसी तरह लिखे गये। अिस अितिहासमें भी यह दोष पढ़नेवालेको ध्यानमें रखना चाहिये।

सत्य

जब जब आश्रममें झूठ बोला गया, तब तब अुसे महारोग समझकर दूर करनेके कड़े अुपाय किये गये। आश्रममें दोष करनेवालेको सजा देनेकी नीति बिलकुल नहीं रखी गयी, — यहाँ तक कि दोष करनेवालेको आश्रमसे अलग कर देनेमें भी संकोच रहता था। दोष न होने देनेके लिअे तीन अुपाय किये जाते थे और किये जाते हैं। पहला तो मुख्य कार्यकर्ताओंकी शुद्धि। अिसके पीछे यह मान्यता रही है कि अगर कार्यकर्ताओंमें कहीं भी दोष न हो, तो आसपासका वातावरण शुद्ध ही रहेगा। जैसे सूर्यके सामने अँधेरा नहीं टिकता, वैसे ही सत्यके सामने असत्य नहीं टिकता।

दूसरा अुपाय बुराअीको जाहिर करना था। कोअी असत्य आचरण करता पाया जाता, तो अुसे समाजके सामने प्रगट कर दिया जाता। अिस अुपायको विवेकके साथ काममें लाया जाय, तो अुसका नतीजा बहुत अच्छा होता है। अिसमे दो सावधानियाँ रखनेकी जरूरत रहती है। अेक तो भूल करनेवालेके खुले आम दोष मजूर करनेमें जबरदस्तीकी गंध भी न होनी चाहिये। दूसरे, दोष जाहिर करनेका असर दोष करनेवाले पर अैसा न होना चाहिये कि फिर अुसे शर्म ही न महसूस हो। दोष प्रगट हुआ कि पाप धुल गया, अैसा खयाल पैदा हो जाय, तो फिर दोषमे रहनेवाली शर्म नहींके बराबर हो जाती है। जरासा असत्य भी महारोग है, अिस बातका भान सदा ही रहना चाहिये।

तीसरा अुपाय मुख्य कार्यकर्ताका और असत्य आचरण करनेवालेका प्रायश्चित्तके रूपमें अुपवास करना है। असत्य आचरण करनेवाला अुपवास करे या न करे, यह अुसकी अपनी अिच्छा पर है। मुख्य कार्यकर्ता तो जाने अनजाने अपनी सस्थामें होनेवाले दोषके लिअे जिम्मेदार है ही। असत्य जहरीली हवासे भी ज्यादा जहरीला और ज्यादा सूक्ष्म है। जहाँ मुखियाकी आध्यात्मिक दृष्टि है, जहाँ वह जाग्रत है, वहाँ यह सूक्ष्म जहर घुस नहीं सकता। अिसलिअे अगर वह घुसता नजर आये, तो वह मुखियाके लिअे चेतावनी रूप है। अुसे समझना चाहिये कि अिस जहरके घुसनेमें कहीं न कहीं अुसका अपना भी हाथ है। मेरा खयाल है कि जितना साफ असर भौतिक शास्त्रमें अमुक मिश्रणोंका या क्रियाओंका हम देखते हैं, अुतना ही बल्कि अुससे भी ज्यादा साफ असर रूहानी क्रियाओंका होता है। बात अितनी ही है कि हमारे पास अुसे नापनेके

२५-४-'३२

चैन नहीं है। अिसलिअे अैसे अवसरोंके बारेमें हमें जल्दी विश्वास नहीं होता, या होता है तो वह पक्का नहीं होता। फिर, बहुधा हम अपने साथ बहुत अुदारतासे काम लेते हैं। अिसका फल यह होता है कि हमारे प्रयोगोंमें कामयाबी नहीं होती और हम कोल्हूके बैलकी तरह अेक ही दायरेमें घूमा करते हैं। अिस तरह अज्ञानकी गाड़ी चलती रहती है और अन्तमें हम अैसे निर्णयपर आते हैं कि असत्य अनिवार्य है। जो अनिवार्य माना जाता है, वह सहज ही जरूरी हो जाता है। अिस तरह सत्यके बदले असत्यकी प्रतिष्ठा बढ़ने लगती है।

अिसलिअे जब जब आश्रममें असत्य देखनेमें आता है, तब तब अुसमें मैंने अपना दोष तो स्वीकार किया ही है। यानी मैं अपनी व्याख्याके सत्य तक नहीं पहुँच पाता हूँ। भले ही अज्ञानसे ही सही, पर मैंने सत्यको पूरी तरह समझा नहीं और अिसलिअे सोचा नहीं, कहा नहीं, तो फिर आचरण कहाँसे करता? मगर अिस तरह दोष स्वीकार करनेके बाद क्या भाग जाअूँ, गुफामें जा बैठूँ, या मौन ले लूँ? अिसे मैं कायरता मानता हूँ। गुफामें बैठकर सत्यकी खोज नहीं होती। जहाँ बोलना जरूरी हो वहाँ चुप कैसी? गुफाके लिअे खास हालतमें स्थान है। मगर मामूली अिन्सानकी कसौटी तो समाजमें ही हो सकती है।

तो फिर मैं असत्यको निकालनेके क्या अुपाय करूँ? यह सोचने पर मुझे देहदमनके सिवा दूसरा कोअी रास्ता नहीं सूझा। देहदमनका अर्थ है अुपवास वगैरा। देहदमनके तीन असर होते हैं: अेक अपनेपर, दूसरा असत्य आचरण करनेवालेपर और तीसरा समाजपर। देहदमनसे मनुष्य खुद ज्यादा सावधान होता है, दिलकी गहराअीमें अुतरकर आत्मनिरीक्षण करता है और अपनी कमजोरी

अिस अधिकारका फैसला हो सकता है। आम तौरपर अधिकार निर्णयकी ये शर्तें पाअी गयी हैं.

(१) दोष करनेवालेके मनमें प्रायश्चित्त करनेवालेके लिअे प्रेम होना चाहिये। प्रायश्चित्त करनेवालेके मनमें दोषीके लिअे प्रेम हो, पर दोषी अिस प्रेमको न पहचाने या खुद दुश्मन बनकर फिरता हो, तो अुसके लिअे प्रायश्चित्त नही हो सकता। जो अपनेको दुश्मन मानता है, वह प्रायश्चित करनेवालेके लिअे तिरस्कार भाव रखता है। अिसलिअे अुसपर प्रायश्चित्तका अुलटा असर पड़ सकता है, या अुपवास अुसपर पाशविक बलात्कारका रूप धारण कर सकता है और वह दुराग्रह माना जा सकता है। अिसके सिवा, जिसके साथ विशेष और प्रेम सम्बन्ध न हो, और अुसके दोषके लिअे प्रायश्चित्तका अधिकार सभीको हो, तो मनुष्यको प्रायश्चित्तसे फुरसत ही न मिले। सारी दुनियाके लिअे प्रायश्चित्तो किसी महात्माको ही भले शोभा दे। यहाँ तो हम साधारण मनुष्योंका ही विचार करते हैं।

३१–५–'३२

(२) दोप प्रायश्चित्त करनेवालेके प्रति भी होना चाहिये। यहाँ कहनेका मतलब यह है कि दोषीके साथ जिसका कोअी सम्बन्ध नहीं, वह दोषीके लिअे प्रायश्चित्त न करे। जैसे, 'अ' की 'ब' के साथ दोस्ती है। पर 'ब' आश्रमवासी है, 'अ' का आश्रमके साथ कुछ भी सम्बन्ध नही। 'ब' का दोष आश्रमके प्रति है। यहाँ 'अ' का न तो प्रायश्चित्त करनेका धर्म है और न अधिकार ही। अगर 'अ' बीचमें पड़ने जाय, तो आश्रमकी विषम स्थिति हो जाय और 'ब' की भी हो सकती है। 'अ' के पास 'ब' के दोषका निर्णय करनेका साधन भी नही हो

प्रायश्चित्तका कारण न होना चाहिये। अैसा हो सकता है कि अिन्सान जिसे आज दोष भरा मानता हो, कल अुसे वही बिना दोषका लगे। अिसलिअे जो चीज दोष रूप मानी जाय, वह अैसी होनी चाहिये, जिसे समाज दोषरूप मानता हो। खादी न पहनना मेरे खयालसे बडा भारी दोष भले हो, मगर मेरे साथीको अिसमें कोअी बुराअी न लगती हो या अुसे महत्त्व न देकर वह यह समझे कि पहनो या न पहनो, और चलता रहे। अगर अैसे वर्तावको दोष मानकर मे अुपवास कर बैठूं, तो वह प्रायश्चित्त नहीं, वल्कि वेजा दवाव माना जायगा। फिर, दोषीको दोष करनेका भान न हो, तो अुसके लिअे प्रायश्चित्त करना ठीक नहीं।

जिसे अैसी संस्था चलानी है जिसमे दण्ड वगैराकी गुंजायश नहीं और जहाँ हर काम धर्मके सहारे करनेकी कोशिश की जाती है, वहाँ यह चर्चा जरूरी है, क्योंकि संचालकोंका प्रायश्चित्त वहाँ सजा वगैराकी जगह ले लेता है। और किसी तरह संस्थाको सुगंधमयी रखना असम्भव है। सजासे भले ही बाहरी दिखावा कायम रखा जा सकता हो, बाहरी व्यवस्था रह सकती हो, संस्थाका काम बढता दीखे। लेकिन सजा अिससे आगे नही जा सकती। प्रायश्चित्तसे भीतर और वाहर दोनोंकी रक्षा होती है और सस्था रोज मजबूत होती जाती है। अिसलिअे अूपर वताये हुअे कुछ अैसे ही नियमोंकी जरुरत है।

अुपवास वगैरा प्रायश्चित होनेपर भी आदर्श सत्यसे आश्रम अलग ही है और अिसीलिअे, जैसा हम आगे देखेंगे, अुसे अभी तो हम अुद्योगमन्दिरके नामसे ही पहचानते हैं। अितना जरूर कहा जा सकता है कि संचालक सावधान हैं। अपनी खामियोंका अुन्हे खयाल

४–६–'३२

है और अुनकी यह कोशिश रहती है कि कहीं असत्य न घुस जाय। लेकिन जहाँ समय समयपर नये आदमी भरती होते रहें, जहाँ बहुतोंको विश्वासपर ही दाखिल किया जाता हो, जहाँ सब प्रान्तों और सब देशोंके मनुष्योंका आनाजाना होता रहता हो, वहाँ सत्यका सर्वांशमें बना रहना आसान बात नहीं। वहाँ तो मानो सत्यकी परीक्षा ही होती है! लेकिन संचालक सच्चे होंगे, तो परीक्षा कितनी ही कठिन होनेपर भी आश्रम अुसमें पास हो जायगा। सत्यकी शक्तिका कोअी माप नहीं, अन्यायोंकी शक्तिका माप भले ही हो। लेकिन यदि वह जागरूक जाबर हो, तो अुसकी शक्तिका भी अन्त नहीं।

प्रार्थना

२६-४-'३२

अगर सत्याग्रह आश्रमकी जड़में ही है, तो प्रार्थना अुस जड़का मुख्य आधार है। जबसे आश्रम स्थापित हुआ, तभीसे रोज प्रार्थनासे ही आश्रमका काम शुरू हुआ है और प्रार्थनासे ही खतम हुआ है। मेरी जानकारीमें अेक दिन भी प्रार्थनाके बिना खाली नहीं गया। मुझे अैसे मौकोंकी याद है, जब प्रार्थनाके स्थानमें बरसात या अैसे ही किसी कारणसे अेक ही जिम्मेदार आदमी हाजिर हुआ हो। शुरूसे ही नियम तो अैसा ही रहा है कि जो बीमार न हों या बीमारी-जैसा ही दूसरा सबल कारण जिन्हें न हो, अैसे सभी सदस्य सार्वजनिक प्रार्थनामें शरीक हों। शामकी प्रार्थनाके बारेमें तो अिस नियमकी पाबन्दी ठीक ठीक हुअी मानी जायगी। मगर सुबहकी प्रार्थनाके बाबत अैसा नहीं कहा जा सकता।

सुबहकी प्रार्थनाका समय शुरू शुरूमें अनिश्चित था। अुसके बारेमें मैंने प्रयोग किये। क्रमशः चार, पाँच, छह और सात बजेकी

प्रार्थना रखी गयी थी। मगर समय समयपर किये गये मेरे आग्रहके कारण आखिर ४-१० या ४-२० का समय तय हुआ है। यानी जागनेकी घंटी ४ बजे बजे, तो अुसके बाद मुँह हाथ धोकर और दतौन करके सब लोग ४-२० तक आ जायँ।

मैंने माना है कि हिन्दुस्तान-जैसे समशीतोष्ण प्रदेशमें मनुष्य जितना जल्दी अुठे अुतना ही अच्छा है। करोड़ों आदमियोंको जल्दी अुठना ही पड़ता है। किसान देरसे अुठे तो अुसकी खेती बिगड़ जाय। पशुओंकी सँभाल बड़े सबेरे ही होती है, गाय सबेरे सबेरे ही दुही जाती है। जिस देशमें यह हालत हो वहाँ सत्यार्थी, मुमुक्षु, सेवक या संन्यासी सुबह दो-तीन बजे अुठे, तो यह नहीं कहा जा सकता कि वह कोअी बड़ी बात कर रहा है। हाँ, न अुठे तो अचरज हो। सभी देशोंमें धार्मिक मनुष्य, प्रभुके भक्त और गरीब किसान जल्दी ही अुठते हैं। भक्त भगवानके ध्यानमें लीन होते हैं, किसान अपनी खेतीके कामोंमें लगकर अपनी और दुनियाकी सेवा करते हैं। मेरे खयालसे दोनों ही भक्त हैं। पहले ज्ञानपूर्वक भक्त हैं। किसान अनजानमें अपनी मेहनतसे प्रभुको भजते हैं, क्योंकि अुनपर जगत निर्भर करता है। वे मेहनत न करके ध्यान लगाकर बैठ जायँ, तो धर्मभ्रष्ट हो जायँ और अपने नाशके साथसाथ संसारका भी नाश करें।

२७-४-'३२

४-६-'३२

मगर किसानको हम भक्त मानें या न मानें? जहाँ किसानको, मजदूरको या दूसरे गरीबोंको अिच्छासे या अनिच्छासे बड़ी सुबह अुठना पड़ता है, वहाँ जिसने सेवाको धर्म माना है, जो सत्यनारायणका पुजारी है, वह कैसे सोता रहे? फिर आश्रममें तो शक्ति और

सेवाके लिअे अुपयोगका मेल बैठानेकी कोशिश है। अिसलिअे कितनी ही अड़चनें महसूस हों, तो भी आश्रममें सभी सशक्तोंको जल्दी अुठना ही चाहिये। यह मुझे हमेशा दीपककी तरह साफ दिखाअी दिया है, और मैंने चार बजेका वक्त जल्दीका नहीं, बल्कि अुठनेका देरसे देरका वक्त माना है।

कअी प्रयोगोंके बाद अब बरसोंसे आश्रममें अुठनेका घंटा चार बजे बजता है और प्रार्थना ठीक ४-१० या ४-२० पर शुरू होती है।

५-६-'३२

प्रार्थना कहाँ की जाय? कोअी मन्दिर बनाकर या बाहर आकाशके नीचे? वहाँ भी कोअी चबूतरा बनाकर या रेत और धूलपर ही? कोअी मूर्ति रखी जाय या नहीं? वगैरा सवाल भी तय करने थे। अन्तमें आकाशके नीचे, मिट्टी या रेतपर ही बैठकर, मूर्तिके बिना प्रार्थना करनेका निश्चय हुआ। आश्रमका आदर्श गरीबी धारण करना है, भूखों मरते करोड़ोंकी सेवा करना है। आश्रममें कंगालके लिअे जगह है। यह कहा जा सकता है कि जो नियमकी पाबन्दी रखनेको तैयार हैं, वे सभी भरती हो सकते हैं। ऐसे आश्रममें प्रार्थना-मन्दिर अीटचूनेका मकान नहीं हो सकता। अुसके लिअे आकाशका छप्पर और दिशाओंरूपी खम्भे और दीवारें ही काफी होनी चाहियें। चबूतरा बनानेका विचार था, वह भी रद हुआ। संख्याकी हद जब नहीं बाँधी जा सकती, तो फिर चबूतरेकी हद कौन बाँधे? बहुत बड़ा चबूतरा बनानेमें खर्च बहुत होता है। अनुभवसे पता चला कि मकान या चबूतरा न बनानेका विचार ठीक था। आश्रमके बाहरके लोग भी प्रार्थनामें

आ सकते हैं। अिससे कअी बार तादाद अितनी हो जाती है कि कितना ही बडा चबूतरा बनाते, फिर भी कभी कभी छोटा पड़ जाता।

फिर, आश्रमकी प्रार्थनाका अनुकरण दिन दिन बढते जानेके कारण भी आकाश-मन्दिर ही ठीक साबित हुआ है। जहाँ जहाँ मैं जाता हूँ, वहीं सुबह शाम प्रार्थना होती ही है। अुसमें खासकर शामको अितनी भीड होती है कि वह खुले मैदानमें ही हो सकती है। और मुझे मन्दिरमें ही प्रार्थना करनेकी आदत पड़ी हुअी होती, तो शायद सफरमें सार्वजनिक प्रार्थना करनेका विचार भी नहीं आता।

फिर, आश्रममें सब धर्मोंके लिअे समान आदर है। सब धर्मोंके लोगोंको भरती होनेकी छूट है। अुनमें मूर्तिपूजक भी हो सकते हैं, मूर्तिपूजाको न माननेवाले भी हो सकते हैं। किसीको आघात न पहुँचे, अिस खयालसे आश्रमकी सामाजिक प्रार्थनामें मूर्ति नहीं रखी जाती। जो अपने कमरेमें रखना चाहें, अुन्हें कोअी मनाही नहीं है।

प्रार्थनामें क्या होता है?

७-५-'३२

सुबहकी प्रार्थनामें 'आश्रमभजनावली'में छपे हुअे श्लोक, अेकाध भजन, रामधुन और गीतापाठ होता है। शामको गीताके दूसरे अध्यायके पिछले अुन्नीस श्लोक, भजन, रामधुन और अक्सर कुछ न कुछ पाठ होता है। पहलेसे ही अैसा नहीं था। श्लोक काकासाहब कालेलकरके छाँटे हुअे हैं। काका साहब आश्रममें शुरूसे ही शरीक हैं। काका साहबकी जानपहचान मगनलालने शान्तिनिकेतनमें की। जब मैं

विलायतमें था, तब मगनलालने बच्चों सहित शान्तिनिकेतनका आसरा लिया था। दीनबन्धु अेण्ड्रूज और स्व० पिअर्सन अुस वक्त शान्तिनिकेतनमें थे। मैंने जहाँ अेण्ड्रूज कहें, वहाँ ठहरनेकी मगनलालको सलाह दी थी। अेण्ड्रूजने शान्तिनिकेतन पसन्द किया। काका साहब अिन दिनों शान्तिनिकेतनमें थे। वहाँ शिक्षकका काम करते थे। मगनलाल और काका साहबके बीच निकट सम्बन्ध हो गया। मगनलालको संस्कृत जाननेवाले अध्यापककी कमी महसूस हुआ करती थी। वह काका साहबने पूरी कर दी। अुनमें वहाँके चिन्तामणि शास्त्री भी मिल गये। काका साहबने प्रार्थनामें श्लोक सिखाये। शान्तिनिकेतनमें जो श्लोक सबने सीखे थे, वे आजसे ज्यादा थे। अुनमेंसे कुछ श्लोक काका साहबसे मशवरा करके समय बचानेकी खातिर निकाल दिये गये। जो बाकी रहे वे आज चलते हैं। अिस तरह प्रातःकालमें गाये जानेवाले श्लोक आश्रमके आरम्भकालसे आजतक चले आ रहे हैं, और सम्भव है कि अेक दिन भी अैसा न हुआ कि ये श्लोक आश्रममें न गाये गये हों।

अिन श्लोकोंपर काफी हमले हुअे हैं,— किसी वक्त समय बचानेके खयालसे, किसी समय अिस खयालसे कि कुछ श्लोक अैसे हैं जिन्हें सत्यका पुजारी नहीं गा सकता और कभी कभी अिस मान्यतासे कि अिन श्लोकोंको हिन्दुओंके अलावा और लोग नहीं गा सकते। यह तो निर्विवाद है कि ये श्लोक हिन्दू समाजमें ही गाये जानेवाले हैं, लेकिन मुझे अैसा नहीं लगा कि अिनमें कोअी अैसी बात है, जिससे दूसरे धर्मवालोंको अिनके गानेमें या गाते समय मौजूद रहनेमें कोअी चोट पहुँचे। जिन मुसलमान और अीसाअी मित्रोंने ये श्लोक सुने हैं, अुन्होंने

भी विरोध नहीं किया। जिनको दूसरे धर्मके लिअे आदर है, अुन्हें चोट लगनी भी न चाहिये। और यहाँ अैसोंका ही जिक्र हो सकता है। अिन श्लोकोंमें किसीकी निन्दा या अुपेक्षा जैसी कोअी बात है ही नहीं। आश्रममें हिन्दू धर्मवालोंकी बहुत बड़ी सख्या होनेके कारण पसन्दगी तो हिन्दूधर्मके श्लोकोंकी ही हो सकती है। लेकिन दूसरोंका कुछ भी गाया या पढा न जाय, अैसा कोअी नियम नहीं। बल्कि, प्रार्थनामें प्रसंग आनेपर अिमाम साहब कुरानकी आयते पढते थे। मुसलमानी भजन या गजले तो बार बार गायी जाती हैं। यही बात अीसाअी भजनोंके बारेमें है।

मगर बहुत आग्रहके साथ जो विरोध हुआ, वह सत्यके खयालसे हुआ। सरस्वती, गणेश वगैराकी पूजा सत्यका हनन करनेवाली है। कमलके आसनपर बैठी, वीणा वगैरा हाथमें लिअे सरस्वती नामकी किसी देवीकी हस्ती ही नहीं। मोटे पेटवाला और सूँडवाला गणेश नामका कोअी देवता है ही नहीं। अेक आश्रमवासीने यह दलील बड़ी नम्रताके साथ, मगर अुतने ही जोरसे दी कि अैसे काल्पनिक देवताओंकी प्रार्थना करनेमे और बच्चोंको सिखानेमें सत्यका हनन होता है। अुन्हें दूसरे आश्रम-वासियोंकी हिमायत भी हासिल थी। अिस बारेमें मैने अपनी राय यों दी

“मै अपनेको सत्यका पुजारी मानता हूँ, फिर भी मुझे ये श्लोक बोलनेमें या बच्चोंको सिखानेमे जरा भी चोट नहीं पहुँचती। अगर अूपरकी दलीलसे कितने ही श्लोक रद कर दिये जायँ, तो अुनके गर्भमे हिन्दूधर्मकी जो सारी रचना भरी है, अुसपर हमला होता है। मै यह नहीं कहता कि हिन्दूधर्ममे हमलेके लायक जो

चीज हो, फिर वह कितनी ही पुरानी हो, अुसपर हमला न किया जाय। मगर अिसे मैं हिन्दूधर्मका कमजोर या हमला करने लायक अंग नहीं मानता। अिसके विपरीत, मेरा विश्वास है कि हिन्दूधर्ममें यह अंग रहा है, तो शायद यह अुसकी विशेषता है। मैं खुद सरस्वती या गणेश जैसी किसी अलग हस्तीको नहीं मानता। ये सब वर्णन अेक ही अीश्वरकी स्तुतियाँ हैं। अुसके बेशुमार गुणोंको भक्त कवियोंने मूर्तिमान कर दिया है। यह कोअी बुरी बात नहीं हुअी। अैसे श्लोकोंमें अपनेको या और किसीको धोखा देनेकी कोअी बात नहीं। देहधारी जब अीश्वरकी स्तुति करने बैठता है, तब वह अुसके बारेमें अपनी पसन्दकी कल्पना कर लेता है। अुसकी कल्पनाका अीश्वर अुसके लिअे तो है ही। निर्गुण निराकार अीश्वरकी प्रार्थना बोलते ही अुसमें गुणोंका आरोपण होता है। गुण भी आकार ही हैं। असलमें अीश्वरका वर्णन नहीं किया जा सकता। वह वाणीकी सीमासे बाहर है। मगर पामर मनुष्यको तो अुसकी कल्पनाका ही आधार है। अुसीसे वह पार लगता है और अुसीसे डूबता भी है। अीश्वरके लिअे जो भी विशेषण शुद्ध हेतुसे विश्वासके साथ गाओ, वह तुम्हारे लिअे सच्चा है। और असलमें अैसे तो झूठा है ही, क्योंकि अुसके लिअे कोअी भी विशेषण काफी नहीं होता। मैं खुद बुद्धिसे यह बात जानता हूँ, फिर भी अुसके गुणोंका बखान किये बिना, अुसका ध्यान किये बिना नहीं रह सकता। मेरी बुद्धि जो कहती है, अुसका असर हृदयपर नहीं होता। मैं यह स्वीकार करनेको तैयार हूँ कि मेरे कमजोर दिलको गुणोंवाले अीश्वरका आसरा चाहिये। जो श्लोक मैं पिछले पन्द्रह सालसे गाता आया हूँ, वे मुझे शान्ति देते हैं, मुझे अपने खयालसे सच्चे मालूम होते हैं। अुनमें मुझे सौन्दर्य,

काव्य, और शान्ति नजर आती है। सरस्वती, गणेश वगैराके लिअे विद्वान लोग कअी कथायें कहते हैं। वे सब बेकार नहीं। अुनका भेद मुझे मालूम नहीं। अुनमें मै गहरा अुतरा भी नहीं। अपनी शान्तिके लिअे मुझे गहरा अुतरनेकी जरूरत भी नहीं जान पडी। अिसलिअे सम्भव है मेरा अज्ञान ही मुझे बचा लेता हो। सत्यकी खोज करते हुअे अिस चीजकी गहराअीमे जानेकी जरूरत मुझे महसूस नहीं हुअी। अपने अीश्वरको मै जानता हूँ। अुस तक मैं पहुँचा नहीं हूँ, मगर मेरे लिअे अितना काफी है कि मै अुस दिशामें जा रहा हूँ।"

मै यह आग्रह नही रख सकता कि अैसी दलीलसे साथियोंको सन्तोष होगा ही। मुझे पता नहीं कि अिससे किसको कहाँ तक सन्तोष हुआ। अिस बारेमें अेक बार अेक समिति मुकर्रर की गयी थी। जी भरके चर्चा होनेके बाद यह फैसला हुआ कि जो भी चुनाव किया जायगा, किसी न किसीको अुसीमें कोअी न कोअी दोष तो दिखेगा ही। अिसलिअे जो है अुसीको रहने दिया जाय। अुन श्लोकोंका अर्थ सब अपनी अपनी कल्पनाके अनुसार करेंगे। मै जिन बातोका बयान कर गया हूँ, वे सब अेक साथ नही घटी। अलग अलग मौकोंपर अलग अलग विरोध हुअे। वे सब मैने अेक जगह अिकट्ठे करके दे दिये हैं।

श्लोकोंके साथ भजन होते ही थे। प्रार्थनाकी शुरुआत दक्षिण अफ्रीकामें भजनसे ही हुअी थी। श्लोक हिन्दुस्तानमें आनेके बाद जोडे गये। भजन गाने-गवानेमें मगनलाल ही मुखिया थे। अिससे हम दोनोंको असन्तोष था। जो कुछ करना हो, अच्छी तरह यानी सच्ची रीतिसे करनेका लोभ था। अिसलिअे कोअी

संगीतशास्त्री मिले, तो अुससे सब तालीम लें और उनके साथ भजन गायें। भजनमें अेक स्वर न निकले, तो अुसमें तल्लीन होना असम्भव नहीं, तो मुश्किल तो था ही। मगर शास्त्री अैसा होना चाहिये, जो आश्रमके नियमोंका पालन करे। अैसा लगा कि अिस तरहका संगीतशास्त्री मिलना कठिन है। तलाश करते करते मगनलालको स्व० संगीताचार्य विष्णु दिगम्बर शास्त्रीने अपने पहले शिष्य नारायण खरेको प्रेमपूर्वक दे दिया। अुन्होंने आश्रमके खयालसे पूरा सन्तोष दिया, और वे अब आश्रमके पूरे सदस्य बनकर रह रहे हैं। अुन्होंने भजनोंमें रस अुंडेला और जो 'आश्रम भजनावली' आज हजारों लोग आनन्दके साथ पढ़ते हैं, वह मुख्यत अुन्हींकी कृति है। भजनके साथ अुन्होंने रामधुन जारी की।

अभी प्रार्थनाका चौथा अंग बाकी है। वह है गीतापाठ। समय समयपर तो गीता पढ़ी ही जाया करती थी। बरसोंसे आश्रमवासी गीताको आचारविचारके लिअे प्रमाण-ग्रंथ मानते हैं। कोअी आचार या विचार शुद्ध है या नहीं, यह देखनेके लिअे आश्रम गीताको अैसी ही समझता है, जैसे हिज्जे या अर्थ जानना चाहनेवाला विद्यार्थी शब्द या अर्थकोषको मानता है। अिस गीताका अर्थ हर आश्रमवासी जाने तो अच्छा, यह सबको जबानी याद हो जाय तो और भी अच्छा, और अैसा न हो सके तो भी मूलको शुद्ध अुच्चारण करके पढ़ सके तो ठीक — अिस किस्मके विचारोंको लेकर रोज गीतापाठ करना शुरू किया। पहले थोड़े श्लोक थे, और याद हो जाने तक वे ही श्लोक रोज बोले जाते। अिसमेंसे पारायण पैदा हुआ और अब गीताके अध्याय अिस ढंगसे जमा लिये गये हैं कि चौदह दिनमें पूरी गीता पढ़ी जाय। अिस तरह हर आश्रमवासी जान सकता है कि किस दिन कौनसे श्लोक पढ़े

जाते हैं। हर दूसरे शुक्रवारको पहला अध्याय शुरु होता है। यह लिखा जा रहा है अुसके बादका शुक्रवार (१० जून, १९३२) पहले अध्यायका है। अठारह अध्याय चौदह दिनमें पूरे करनेके लिअे ७+८, १२+१३, १४+१५, १६+१७ अेक ही दिन अेक-साथ गाये जाते हैं।[६]

मैं कह चुका हूँ कि शामकी प्रार्थनामें भजन और रामधुनके सिवा गीताके दूसरे अध्यायके पिछले अुन्नीस श्लोक बोले जाते हैं। अिन श्लोकोंमें स्थितप्रज्ञके लक्षण कहे गये हैं। सत्याग्रहीके भी यही लक्षण होने चाहियें। जो चीज़ स्थितप्रज्ञ साधता है, वही सत्याग्रहीको साधनी है। यह हमेशा याद रहे, अिसीलिअे ये श्लोक गाये जाते हैं।

रोज़ अेक ही प्रार्थनाके ठीक होनेके बारेमें यह शंका अुठाअी गयी है कि 'रोज़ अेक ही प्रार्थना करनेसे वह यंत्रवत् हो जाती है, अिससे अुसका असर जाता रहता है।' यह सही है कि प्रार्थना यंत्रवत् हो जाती है। हम खुद यंत्र हैं। अगर हम अीश्वरको यंत्र चलानेवाला मानते हैं, तो हमें यंत्रकी तरह चलना ही चाहिये। सूरज वगैरा अपना काम यन्त्रकी तरह न करें, तो जगत् अेक क्षण भी नहीं चल सकता। पर यंत्रवत्का अर्थ जड बनकर नहीं है। हम चेतन हैं। चेतनको शोभा दे अुतना ही चेतन यन्त्रकी तरह काम करे, वैसा चले। प्रार्थना अेक ही हो या अनेक, ये दो सवाल नहीं है। यह भी हो सकता है कि अनेक प्रार्थनाअें रखनेपर भी अुनका असर न पड़े। हिन्दुओंकी वही गायत्री, अिस्लामका वही कलमा, अीसाअीकी वही प्रार्थना अिन धर्मोंके लाखों आदमी सदियोंसे रोज़ पढ़ते आये हैं। लेकिन अिससे अुनका चमत्कार कम नहीं हुआ, बल्कि बढ़ा है। अगर अुनके पीछे मनुष्यकी

भावना रहेगी, तो अुनका चमत्कार और भी बढ़ेगा। वही गायत्री, वही कलमा, वही औसाकी प्रार्थना नास्तिक पढ़े या तोता पढ़े, तो अुनका कुछ भी असर न होगा। मगर जब वही आस्तिकके मुँहसे रोज निकलती है, तब अुनकी भव्य शक्ति रोज बढ़ती जाती है। हमारी मुख्य खुराक रोज वही की वही होती है। गेहूँ खानेवाले और और चीज़ें भले ही लें, अुनमें बदला करें, परन्तु गेहूँकी रोटी तो रोज लेंगे ही। अिससे अुनका शरीर बनेगा, वे अूबेंगे नहीं। अूब जायँ तो शरीरका अन्त नज़दीक आ जाय। यही बात प्रार्थनाकी है। मुख्य प्रार्थना तो अेक ही होगी। आत्माको यदि अुसकी भूख होगी, तो वह अेक प्रार्थनासे भी अूबेगी नहीं, बल्कि पुष्ट होगी। जिस दिन प्रार्थना न होगी, अुस दिन अुसे अुसकी भूख रहेगी। वह अुपवासीसे भी ज्यादा ढीला लगेगा। शरीरके लिअे किसी दिन अुपवास जरूरी होता है। लेकिन आत्माको प्रार्थनाकी बदहज़मी हुअी अैसा कभी सुनी नहीं।

असल बात यह है हममेंसे बहुतेरे आत्माकी भूखके बिना प्रार्थना करते हैं। आत्मा है, यह माननेका 'फैशन' है, यह रिवाज है, अिसलिअे 'है यह मानते हैं।', अिस तरहकी खराब हालत बहुतोंकी होती है। कितनों ही के लिअे 'आत्मा है', यह अुनकी बुद्धि निश्चित कर देती है। क्योंकि वह हृदयगत नहीं होती। अिसलिअे अुन्हें प्रार्थनाकी जरूरत नहीं होती। बहुतेरे प्रार्थनामें यह मानकर शरीक होते हैं कि समाजमें रहकर वही करना चाहिये, जो समाज करता है। अैसोंको विविधताकी जरूरत जान पड़ती है। मगर दरअसल वे प्रार्थनामें शरीक होते ही नहीं। वे संगीत सुनने आते हैं, तमाशा देखने आते हैं, प्रवचन सुनने आते हैं, लेकिन अीश्वरके साथ अेकता साधने नहीं आते।

प्रार्थनाका अर्थ क्या है ?

प्रार्थनाका मूल अर्थ तो माँगना होता है। अीश्वरसे या बड़ोंसे नम्रताके साथ की गयी माँग ही प्रार्थना है। यहाँ अिस अर्थमें प्रार्थना शब्द काममें नहीं लिया गया है। प्रार्थना यानी अीश्वरकी स्तुति, भजन कीर्तन, (अुपासना), सत्संग, अंतर्ध्यान, अन्तरशुद्धि।

१२–६–'३२

परन्तु अीश्वर कौन ? वह कोअी हमारे शरीरसे या संसारसे बाहर रहनेवाला व्यक्ति नहीं। वह तो सर्वव्यापक है, सर्वज्ञ है, सर्वशक्तिमान है। अुसे स्तुतिकी क्या गरज ? सर्वव्यापक होकर वह सब कुछ सुनता है, हमारे विचार जानता है, जोरसे बोलकर अुसे क्या सुनाया जाय ? वह हमारे दिलमें बसा हुआ है। नाखून अंगुलीके जितना पास है, अुससे भी वह हमारे ज्यादा नजदीक है। यहाँ प्रार्थना क्या करेगी ?

चूँकि अैसी परेशानी है, अिसीलिअे प्रार्थनाका अर्थ भीतरी शुद्धि भी किया गया है। बोलकर अीश्वरको नही सुनाना है। बोलकर या गाकर हमे अपनेको ही सुनाना है, नीदसे जागना है। हममेंसे कअी अीश्वरको बुद्धिसे पहचानते है। कितनोंको अुसके बारेमें भी शका है। किसीने अीश्वरको आँखोंसे नही देखा। हमें अुसे दिलसे पहचानना है, अुसका साक्षात्कार करना है, अुसके स्वरूपमें मिल जाना है। अिसीके लिअे प्रार्थना करते हैं।

यह अीश्वर, जिसके हम दर्शन करना चाहते हैं, सत्य है। या यों कहिये कि सत्य ही अीश्वर है। सत्यका अर्थ अितना ही नही कि सच बोला जाय। सत्य यानी अिस जगत्में जो अपने रूपमें हमेशासे था, है और रहेगा और अुसके सिवा दूसरा कुछ

भी नहीं, जो अपनी शक्तिसे है, जिसे किसीका सहारा नहीं चाहिये, बल्कि जगतमें जो कुछ है अुसीके सहारे है। सत्य ही शाश्वत है, बाकी सब क्षणिक है। अुसे किसी आधारकी जरूरत नहीं। वही शुद्ध चेतन है, वही शुद्ध आनन्द है। अुसे अीश्वर कहते हैं, क्योंकि अुसीकी सत्तासे सब कुछ चलता है। वह और अुसका कानून अेक ही है, अिसलिअे कानून चेतनरूप है। अिस कानूनके सहारे सारा तंत्र चलता है। अिस सत्यकी आराधना ही प्रार्थना, यानी अपनी सत्यमय होनेकी तीव्र अिच्छा है। यह अिच्छा चौबीसों घंटे होनी चाहिये। मगर हममें अितनी जाग्रति नहीं है कि हम मुकर्रर समयपर प्रार्थना, आराधना या अुपासना करें ही और अैसा करते करते हमें चौबीसों घंटे सत्यका ध्यान रहे।

आश्रम अिस तरहकी प्रार्थनाको प्राप्त करना चाहता है। अभी तो वह अुससे बहुत दूर है। अूपर बताये हुअे सब बाहरी अुपाय हैं। मगर किसी भी तरह प्रार्थना हृदयमें अुतारनेका खयाल है, और अगर आश्रमकी प्रार्थना अभी तक भी आकर्षक नहीं बनी, अभी तक भी आश्रमवासियोंको हाजिर रहनेके लिअे टोकना पड़ता है, तो अुसका अर्थ यह है कि आश्रममें हममेंसे किसीमें भी मैंने कहा अुस अर्थमें प्रार्थना मूर्तिमान नहीं बनी है।

हृदयमें अुतरी हुअी प्रार्थनामें तो फक्त अितना अनुध्यान रहना चाहिये कि अुस वक्त अुसे किसी दूसरी चीजका भान ही न हो। भक्तको विषयीकी अुपमा ठीक ही दी गयी है। विषयीको जब अुसका विषय मिल जाता है, तब वह अपना भान भूलकर विषयरूप बन जाता है। अुसकी सारी अिन्द्रियाँ तदाकार हो जाती हैं, क्योंकि अुसे अपने विषयके सामने और कुछ सूझता ही नहीं। अिससे भी ज्यादा तदाकारिता अुपासकमें होनी चाहिये। यह तो

बहुत कोशिशसे, तपसे, संयमसे ही समय पाकर आती है। जहाँ असा कोअी भक्त होता है, वहाँ प्रार्थनामें जानेके लिअे किसीको ललचाना नहीं पड़ता। अुसकी भक्ति औरोंको जबरदस्ती खींचती है।

यहाँ तक सामूहिक प्रार्थनाके बारेमें लिखा गया। मगर आश्रममें निजी, अेकान्त प्रार्थनापर भी जोर दिया जाता है। जो अकेला प्रार्थना करता ही नहीं, वह भले ही सामूहिक प्रार्थनामें शरीक हो, मगर अुसमेंसे वह बहुत कुछ लेता नहीं। समाजके लिअे सामूहिक प्रार्थना बहुत जरूरी है। लेकिन जैसे व्यक्तिके बिना समाज हो ही नहीं सकता, अुसी तरह निजी प्रार्थनाके बिना सामूहिक प्रार्थना सम्भव नहीं। अिसलिअे हर आश्रमवासीको बार-बार चेतावनी दी जाती है कि अुसे सोतेजागते अनेक बार अपने आप ही अंतर्ध्यान होना जरूरी है। अिसके लिअे कोअी पहरा नहीं लगा सकता। अिसका हिसाब नहीं हो सकता। मैं नहीं कह सकता कि आश्रममें यह प्रार्थना कहाँ तक होती है। मैं असा मानता हूँ कि थोड़ी बहुत मात्रामें सभी अिस तरफ कोशिश करते हैं।

अहिंसा

यह कहा जा सकता है कि ज्यादासे ज्यादा परेशानी शायद अहिंसा पालनके बारेमें हुअी है। सत्यकी पहेलियाँ रहा ही करती हैं। प्रार्थना हृदयमें नहीं अुतरती। मगर ये दोनों क्या हैं, यह समझनेमें बहुत मुश्किल नहीं पड़ती। अहिंसाके समझनेमें ही दम निकल जाता है। जितनी चर्चा अहिंसाकी हुअी है, अुतनी आश्रममें और किसी विषयकी नहीं हुअी होगी। कोअी काम किया, वह हिंसा है या अहिंसा, यह सवाल आश्रममें अुठा ही

करता है। और बहुत बार हिंसा-अहिंसाका भेद जानते हुअे भी अहिंसाका पालन नहीं किया जा सकता। पालन करनेमें अक्सर कमजोरी आड़े आती है। यह कमजोरी भी अैसी नहीं होती, जो आसानीसे दूर हो सके। मन, वचन और शरीरसे किसीका भी, अपना या दूसरेका भला मानकर भी, किसी जीवको दुःख न देना अहिंसा है। अिसपर पूरी तरह अमल करना देहधारीके लिअे असम्भव है। वह अेक साँस लेनेमें ही बेशुमार सूक्ष्म जीवोंकी हिंसा करता है। आँख टिमटिमानेमें जो जीव आँखपर बैठना चाहते हैं, अुनकी हिंसा होती है। खेती करनेमें अनेक छोटे-बड़े जानवरोंकी हिंसा होती है। साँप-बिच्छू काटेंगे, अिस डरसे अुन्हें मारें नहीं तो पकड़कर दूर छोड़ आते हैं। अुन्हें पकड़नेमें थोड़ा दुःख तो होता ही है। अुसे भले ही अनिवार्य समझा जाय, मगर अूपरकी व्याख्याके अनुसार वह हिंसा तो है ही।

मैं जो खाता हूँ, जो जगह रोकता हूँ, जो कपड़े पहनता हूँ, वह बचाअूँ, तो यह स्पष्ट है कि वह सब मुझसे जिन्हें ज्यादा जरूरत है अुन गरीबोंके काम आये। मेरे स्वार्थके कारण अुन्हें वे चीजें नहीं मिल पातीं। अिसलिअे मेरे भोगसे मेरे कंगाल पड़ोसीकी हिंसा होती है। जीनेके लिअे मैं कअी तरहकी वनस्पति खाता हूँ, अुसमें वनस्पति जीवनकी हिंसा है।

अिस व्यापक हिंसामें पड़ा हुआ मैं किस तरह अहिंसा पालूँ? पगपगपर नयी समस्यायें खड़ी ही होनेवाली हैं।

अूपर बताअी हुअी हिंसा तो अैसी है, जो समझमें आ सके। मगर हम अेक दूसरेसे जो सूक्ष्म द्वेष करते हैं, अुसका क्या हो? शिक्षक लड़कोंको मारे, माँ बच्चोंको डाँटे, गरीबसे सरीखे

अेक दूसरेको लाल आँखें दिखायें, यह सब हिंसा ही है और बुरी तरहकी हिंसा है। अिसे वशमें ही नहीं किया जा सकता। जहाँ रागद्वेष है, वहाँ हिंसा ही है। यह हिंसा कैसे मिटे?

अिसलिअे पहले तो आश्रममे यह सीख लेते हैं कि देश, कुटुम्ब या अपने लिअे किसीका सिर धडसे अुडा देना तो हिंसा है ही। मगर क्रोध वगैरासे रोज होनेवाली सूक्ष्म हिंसा अिस मोटी हिंसासे शायद अधिक खराब है। अलग हिसाब लगायें तो दुनियामें रोज होनेवाले खूनोंकी सख्या मामूली जान पड़ेगी। दुनियाकी आबादीके प्रमाणमें जो मौतें और तरहसे होती हैं, अुनसे तुलना करनेपर खूनोंकी तादाद नाम मात्रकी मालूम होगी। मगर क्रोध वगैरासे रोज होनेवाली सूक्ष्म हिंसाका अन्दाजा ही नहीं लग सकता।

अिन सब तरहकी हिंसाओंको काबूमे लेनेकी कोशिश आश्रममें रोज होती है। सब अपनी कमजोरी समझते हैं। सॉप वगैराका डर मुझसे लगाकर सबको है। अिसलिअे अुन्हें पकडकर किसीको नुकसान न हो, अैसी जगह छोड आनेका आम रिवाज है। और काअी डरके मारे अुसे मार डाले, तो वह अुलाहनेका पात्र नहीं गिना जाता। अेक बार गोशालामें अेक भयंकर नाग अैसी जगह घुस बैठ था, जहाँसे अुसे पकड़ा नहीं जा सकता था। अैसी हालतमें वहाँ ढोर बाँधनेमें जोखम थी। आदमी काम करते भी डरते थे। मजबूर होकर मगनलालने अुसे मार डालनेकी मंजूरी दे दी। मुझसे जब अुसने यह बात कही, तो मैने अुसका काम पसन्द किया। मै मानता हूँ कि मै खुद आश्रममें होता ता और कोअी अुपाय नहीं कर सकता था। मुझे अपनी बुद्धि कहती है कि साँपको भी अपना सगा समझकर बर्ताव करना

चाहिये। अुसके काटनेसे मौत हो जाय, तो वह जोखम अुठाकर भी मुझे साँपको हाथसे पकड़कर डरनेवालोंके पाससे हटाना चाहिये। मगर मेरे दिलमें न अितनी मित्रभावना है, न अितनी निर्भयता है। और न साँप वगैराके काटनेसे होनेवाली मौतकी लापरवाही है। अिन तीनों बातोंकी हृदयको तालिम देनेकी मेरी कोशिश है, पर मैं सफल नहीं हुआ। यह सम्भव है कि मुझपर साँप हमला करे तो मैं अुसका हमला सह लूँ और अुसे मारनेको तैयार न होअू। दूसरेके शरीरको जोखममें डालनेको मैं तैयार नहीं हूँ।

अेक समय बन्दरोंका अुपद्रव अितना सख्त हो गया था कि वे फसलको बेहद नुकसान पहुँचाने लगे। रखवाले अुन्हें गोफणसे डराते, पर वे क्या डरें? अन्तमें वे बन्दरोंको घायल करने लगे। अेक लँगड़ा हो गया। मुझे अिसमें शरीर दण्डसे ज्यादा हिंसा दिखाअी दी। अिस बारेमें साथियोंने चर्चा करके यह फैसला हुआ कि वे न जायें, तो गोफण या दूसरी तरहसे घायल करनेकी अपेक्षा दूसरे किन्हीं हल्के अुपायोंसे अेकन्दोकी जान ली जाय और अुपद्रवको खत्म किया जाय। यह आखिरी फैसला करनेसे पहले मैंने 'नवजीवन'के जरिये और मित्रोंको लिखकर जाहिर चर्चा की थी। अिसलिअे यहाँ सारी दलीलोंमें नहीं अुतरता। जिन्हें अिस विषयमें ज्यादा जाननेकी अिच्छा हो वे 'नवजीवन'[७] पढ़ लें।

मनुष्यके सिवा दूसरे प्राणी हिंसक हों, तो भी अुन्हें न मारनेका धर्म हिन्दुस्तानके बाहर माना गया हो, यह मैं नहीं जानता। मालूम हुआ है कि अैसा धर्म सन्त फ्रान्सिस-नामके व्यक्तिने पाला था। लेकिन अुसका आम लोगोंमें पाला जाना मेरी जानकारीमें नहीं। आश्रम अिस धर्मको मानता है। फिर भी यह दुःखकी बात है कि अिसे अमलमें लानेमें आश्रम बहुत कच्चा है। अिस धर्मको

पालनेकी कला अभी हाथ नहीं लगी है। सम्भव है कि अुसके पालनमें बहुतसे लोगोंको अपने प्राण गँवाना होंगे, तभी यह हाथ लगेगी। अभी तो यह सिर्फ मनोरथके रूपमें है। बहुत समयसे यह धर्म मान लिया जानेपर भी अुसका पालन मन्द है। अिसका मुख्य कारण मैं यह मानता हूँ कि धर्मको स्वीकार करनेवाले आलस्यके मारे या दूसरे कारणोंसे अपने आपको धोखा देते हैं।

पागल कुत्तेको मार डालनेका आश्रममें रिवाज है। अैसा अवसर मेरी जानकारीमें अेक ही बार आया है। अैसा करनेमें ख़याल यह रहा है कि पागल कुत्ता तक़लीफ पा-पाकर मर ही जाता है। वह अच्छा नहीं हो सकता। वह दूसरी जगह जहाँ भी पहुँचता है, वहीं लोग अुसे मार डालनेके बजाय पीड़ा पहुँचाते हैं, और वे अहिंसाधर्मका पालन करते हैं यह मानकर अपनेको धोखा देते हैं। मेरे ख़यालसे तो वे ज्यादा हिंसा करते हैं। अैसा समझकर आश्रमने पागल कुत्तोंको मार डालना धर्म माना है।

किसी प्राणीको देहमुक्त करनेमें भी कभी कभी अहिंसा हो सकती है, अैसी स्पष्ट मान्यतासे आश्रममें अेक बछड़ेका देहान्त किया गया। यह अेक मशहूर मिसाल है। अिस बछड़ेका पैर टूट गया था। अुसमें घाव हो गये थे, कीड़े पड़ गये थे। न अुसे अुठाया जा सकता था और न कोअी दूसरी राहत पहुँचाअी जा सकती थी। अितना बड़ा जानवर था कि मनुष्यसे न अुसकी करवट बदली जा सकती थी और न अुसे गोदमें अुठाया जा सकता था। अुसे शरीरसे मुक्त न किया जाता तो यही होता कि वह कष्ट पाता रहता और हम देखा करते। यह आशा न थी कि वह बछड़ा बहुत दिन लेगा। अैसी हालतमें मुझे लगा कि अुसकी जान ले लेनेमें दया है। अैसे दुखियाकी पीड़ाको लम्बानेमें मुझे धर्म न जान

पड़ा। जहाँ अपना स्वार्थ न हो, जहाँ प्राणीका ही स्वार्थ देखा जाय, वहाँ मुझे स्पष्ट लगा कि प्राण लेना धर्म हो सकता है। अिसकी लम्बी चर्चा आश्रमवासियोंमें की गयी। कितनों ही ने विरोध भी प्रगट किया था। मगर अन्तमें प्राण लेनेका निश्चय हुआ। मैंने मशहूर सेठ अंबालाल साराभाअीकी मदद माँगी। अुनके यहाँ जो बन्दूकवाले सिपाही थे, अुन्हें भेजनेको कहा। अुन्होंने चमड़ीके जरिये ज़हरकी पिचकारी लगाकर प्राण लेनेका अुपाय ज्यादा पसन्द किया। मैंने अिसका समर्थन किया। अुनके डाक्टरने आकर जहर देकर थोड़े ही पलोंमें काम पूरा किया। मैं सारे समय मौजूद था। यह लिखते वक्त भी विचार करते हुअे मुझे किसी किस्मका पछतावा नहीं है। बल्कि मेरा विश्वास है कि यह पुण्यका काम था। बहुतसे हिन्दुओंके दिलको अुससे चोट पहुँची थी। यह पढ़कर भी चोट पहुँच सकती है। मुझे लगता है कि अैसे आघातके पीछे हमारा अहिंसाके स्वरूपका अज्ञान है। अिस वक्त वह जीताजागता धर्म नहीं रहा। अहिंसाका रिवाज पड़ गया है। अुसीके अनुसार अगर सोचें जहाँ तक अैसेको बहुत दिक्कत महसूस न हो, वहाँ तक हिन्दुस्तानके हिन्दू अपना आचरण करते हैं। अिस बछड़ेके विषयकी और अिससे पैदा होनेवाले कअी सवालोंकी पूरी चर्चा 'नवजीवन'* में हो चुकी है।

जितना यह कर मैं मनुष्यके सिवा दूसरे जीवोंके सम्बन्धमें अहिंसाके जो प्रयोग आश्रममें हुअे अुनकी चर्चा पूरी करता हूँ।

आश्रमके ख़यालसे अिस जीवदयामें रहनेवाली अहिंसा अुस व्यापक धर्मका बड़ा किन्तु अेक ही अंग है। अुससे भी बड़ा अंग अिन्सानोंका अेकदूसरेके साथका व्यवहार है। मामूलीसे

मामूली व्यवहार या तो अहिंसक होगा या हिंसक । सौभाग्यसे अहिंसा व्यापक धर्म होनेके कारण मनुष्य अुसका पालन सहज ही करता है । अगर अेकदूसरेको निभा न लिया जाता, तो मनुष्य जातिका कभीसे नाश हो गया होता । अैसे महान अवलोकनोंसे हम अहिंसाधर्म साबित कर सकते हैं । मगर अिससे अुसके पालनका यश हम नहीं ले सकते ।

जहाँ जहाँ हमारा क्षणिक स्वार्थ बाधक होता है, वहाँ वहाँ हम अक्सर जानबूझ कर हिंसाका रास्ता अपनाते हैं। और यह कुटुम्बमें, गाँवमें, देशमें और अलग अलग वर्गोंके सम्बन्धमें समय समयपर देखा जाता है । अहिंसाका ज्ञानपूर्वक पालन मनुष्यको नया जन्म देता है, अुसे बदलता है । यह कठिन धर्म जानबूझकर पालनेकी आश्रममें कोशिश है । अिसमें सैकड़ों रुकावटें आती हैं, निराशाअें पैदा होती हैं, कअी बार श्रद्धाकी परीक्षा होती है । आपसके बर्तावमें आचार शुद्धिसे ही सन्तोष नहीं रहता । किसीके लिअे खराब विचार न करना, अुसने हमारा बहुत नुकसान किया हो तो भी अुसका बुरा न चाहना, अुसे विचारमें भी दु:ख न देना — यह बड़ा मुश्किल है । मगर अहिंसाके पालनकी कसौटी यही है ।

आश्रममें चोर आये हैं, चोर पैदा हुअे हैं । अुन्हें सजा देनेकी नीति नहीं रखी गयी, पुलिसको खबर नहीं दी जाती, अुनके अुत्पातोंको यथाशक्ति बर्दाश्त किया जाता है । अिस नियमका सदा पूरी तरहसे पालन नहीं किया गया । अेक बार दिनमें चोरी करते हुअे चोर पकड़ा गया था । जिसने अुसे पकड़ा अुसने अुसे बाँध दिया, अुसका अपमान तो किया ही । मैं अुस दिन आश्रममें था । मैं अुसके पास गया, अुसे अुलाहना दिया और छोड़ दिया । मगर असलमें देखा जाय तो अिससे अहिंसा-

वादीका धर्म पूरा नहीं होता। अैसे अुत्पातोंको रोकनेके लिअे काफी अुपाय खोजना और करना चाहिये। अेक अुपाय तो है आश्रमके परिग्रह और भोगविलासको कम किया जाय, ताकि किसीको वहाँसे कुछ लेनेका लालच न हो। दूसरा अुपाय यह है कि आसपासके गाँवोंमें शुद्ध आचरणका प्रचार किया जाय। और तीसरा यह कि आश्रमकी सेवा अितनी व्यापक होनी चाहिये कि भलेबुरे सभीमें यह भावना पैदा हो कि आश्रम हमारा है।

अिसपरसे देखा जा सकता है कि परिग्रहीके लिअे स्थूल अहिंसाका भी पूरा पालन असम्भव-सा है। जो अपनी जायदाद रखता है, वह अुसकी रक्षाका भी अुपाय करेगा ही। अुसमें कहीं न कहीं सजाकी गुंजाअिश जरूर रहेगी। जो सब चीजोंसे अपनापन हटाकर अुदासीन होकर व्यवहार करता है, वही स्थूल अहिंसाका पूरा पालन कर सकता है। जिस समाजमें अैसे आदमी या अैसी संस्थाअें ज्यादा होंगी, वहाँ हिंसक अुपाय कमसे कम काममें लाना सम्भव होगा। जैसे हिंसापर रचे हुअे समाजमें गोला बारूदका बड़ा स्थान होता है और अुसका अिस्तेमाल जाननेवाला अच्छा सिपाही समझा जाता है और अिनामोंका हकदार होता है, वैसे ही जहाँ समाज रचना अहिंसापर होती है, वहाँ गोला बारूदकी जगह तप और संयम लेते हैं और अुनसे काम लेनेवाला सिपाही समाजकी रक्षा करता है। अैसे धर्मको दुनियाने अभी तक स्वीकार नहीं किया है। हिन्दुस्तानमें थोड़ा बहुत स्वीकार किया गया है, मगर कह नहीं सकते कि वह व्यापक रूपमें स्वीकार हुआ है। आश्रमने यह विश्वास है कि अैसी अहिंसा व्यापक होनी चाहिये, वह हो सकती है, समाजकी रचना भी अुसपर हो सकती है। और अिसी विश्वासके आधारपर प्रयोग हो रहे हैं। अभी तो यही

कहा जायगा कि सफलता थोड़ी मिली है। अैसी मिसालें मै अिस प्रकरणमे नहीं दे सका हूँ, जिनसे अहिंसाके पुजारीको आश्वासन मिले। राजनीतिक क्षेत्रमे अहिंसाका जो प्रयोग हुआ है, अुसे मै अिसमें नही गिनता। अुस प्रयोगके लिअे अलग प्रकरण[७] होगा।

ब्रह्मचर्य

१९-६-'३२

अहिंसाकी तरह यह व्रत कअी तरहके धर्मसङ्कट और पहेलियाँ पैदा करनेवाला नहीं है। आम तौरपर अिसका अर्थ सब समझते हैं। मगर अर्थ जानते हुअे भी अिसका अमल करनेमें बहुतोंका खून पानी हुआ है, और बहुतेरे कोशिश करनेपर भी आगे नहीं बढ सके। कुछ पीछे भी हटे हैं[१]। पूर्णताको कोअी नहीं पहुँचा। सबको अिसका महत्त्व साफ मालूम हो गया है। मेरा प्रयत्न १९०६के पहले शुरू हुआ। मैने व्रत १९०६ में लिया। बहुत अुतारचढाव आये। ब्रह्मचर्यका सूक्ष्म अर्थ मै अनुभवसे, ठोकरें खाकर ही जान सका। अिसका अर्थ समझनेपर देखा कि पुस्तकमे पढा हुआ अर्थ भी अनुभव किये बिना न समझनेके बराबर ही है। अनुभव होनेके बाद यही अर्थ दूसरी तरह समझमे आता है। चरखे-जैसा निहायत सादा यंत्र चलानेकी शिक्षा पढ लेना अेक बात है और अुसपर अमल करना दूसरी ही बात। अमल शुरू करते ही नयी रोशनी पडती है। और अगर चरखे-जैसी आँखोंको सादी दीखनेवाली चीजके बारेमें यह सही है, तो अप्रत्यक्ष भावोंके बारेमे कितना ज्यादा सही होना चाहिये!

जो मन, वचन और कायासे अिन्द्रियोंको वसमे रखता है, वही ब्रह्मचारी है। अिसका अर्थ अमल करनेपर ही कुछ कुछ

स्पष्ट हुआ, अैसा कहा जा सकता है। पूरी तरह स्पष्ट तो आज भी नहीं हुआ, क्योंकि मैं अपनेको सोलह आने पूर्ण ब्रह्मचारी नहीं मानता। मनके विकार काबूमें रह सकते हैं, लेकिन नष्ट नहीं हुअे। जिसके मनके विचार नष्ट नहीं हुअे, वह पूरा ब्रह्मचारी नहीं गिना जा सकता। जब मैं अुस स्थितिमें पहुँच जाअूँगा, तब अिसी व्याख्याको नयी आँखोंसे देखूँगा। मामूली ब्रह्मचर्य जितना मुश्किल दीखता है, अुतना है नहीं। हमने अुसका अनर्थ करके अुसे कठिन बना दिया है। ब्रह्मचर्यका खेल खेलनेवाले बहुत लोग आगमें हाथ डालकर भी न जलनेकी कोशिश-जैसी कोशिश करते हैं, जलते हैं और फिर असकी कठिनताकी शिकायत करते हैं। यह तो बहुत थोड़े ही समझते हैं कि अेक अिन्द्रियका ही नहीं, बल्कि सभी अिन्द्रियोंका संयम करना है। स्त्रीसंग न करनेमें जो ब्रह्मचर्यका आदि और अन्त मानते हैं, वे ब्रह्मचारी नहीं हैं। और ब्रह्मचर्य बड़ा मुश्किल है, अैसा अुनका सबूत मामूली होना चाहिये। दूसरे सब भोग भोगते हुअे जो पुरुष स्त्रीसंगसे दूर रहनेकी अिच्छा रखता होगा, या अैसी कोअी स्त्री पुरुषसंगसे दूर रहना चाहती होगी, अुसकी कोशिश बेकार है। कुअेंमें जानबूझकर अुतरकर भी पानीसे अछूता रहनेके प्रयत्न जैसा ही यह प्रयत्न है। जो स्त्री-पुरुषसंगके त्यागको आसान बनाना चाहते हैं, अुन्हें अुसे अुत्तेजन देनेवाली सभी जरूरी चीजें छोड़नी चाहिये। अुन्हें जीभके स्वाद छोड़ने चाहियें, शृंगाररस छोड़ना चाहिये और विलास मात्र छोड़ना चाहिये। मुझे जरा भी शक नहीं कि अैसे लोगोंके लिअे ब्रह्मचर्य आसान है।

कुछ लोग अैसा मानते हैं कि अपनी या पराअी स्त्रीके लिअे विकारवश होनेमें, अुन्हें विकारी बनकर छूनेमें ब्रह्मचर्यका

भंग नही होता। यह भयंकर भूल है। अिसमे स्थूल ब्रह्मचर्यका सीधा भंग है। अिस तरह रमनेवाले स्त्रीपुरुष अपनेको और दुनियाको धोखा देते है और दिन दिन शक्तिहीन होते हैं। अैसे स्त्री-पुरुष कअी बीमारियोंके शिकार बनते हैं। अैसे लोगोंकी अन्तिम क्रिया बाकी रहती हो, तो अुसका श्रेय अुन्हें नही, हालातको है। वे पहले ही मौकेपर फिसलनेवाले हैं। यह मैंने अपने और बहुतसे साथियोंके अनुभवसे लिखा है।

आश्रमके ब्रह्मचर्यमें अपनी पत्नीसे भी संग करनेका त्याग है। अपनी स्त्रीके साथ संग चालू रखकर भी जो परस्त्री-संग छोड़ता है, वह ठीक करता है। अुसका ब्रह्मचर्य सीमित भले ही माना जाय, मगर अुसे ब्रह्मचारी मानना अिस महाशब्दका खून करने बराबर है।

अिस तरह ब्रह्मचर्यकी व्याख्या तो पूर्ण ही रखी गयी है। फिर भी आश्रममें स्त्री-पुरुष दोनों रहते हैं और अुन्हें अेक-दूसरेके साथ मिलनेकी काफी आजादी है। यानी आदर्श यह है कि जितनी स्वतन्त्रता माँ-बेटे या बहन-भाअी भोगते हैं, वही आश्रमवासियोंको आपसमे मिल सके। यानी ब्रह्मचर्यके लिअे जिन दीवारोंकी आम तौरपर कल्पना की जाती है, वे सब यहाँ नहीं रखी जाती। अिसके विपरीत यह माना जाता है कि जिस ब्रह्मचर्यको अिन सब दीवारोंकी हमेशा जरूरत हो, वह ब्रह्मचर्य नहीं है। ब्रह्मचर्यके प्रयत्नके लिअे अुस दीवारकी भले ही आवश्यकता मानी जाय, मगर अन्तमे तो वह दीवार टूटनी ही चाहिये। अिसका यह अर्थ नहीं कि दीवार टूटते ही ब्रह्मचारी स्त्रियोंका साथ ढूँढने लगे, परन्तु अिसका अर्थ यह है कि स्त्रीसेवाका प्रसंग आवे, तब वह यह मानकर कि अिसके लिअे मनाही है अुससे भाग नहीं सकता।

ब्रह्मचारीके लिअे स्त्री नरककी खान नहीं है। अुसके लिअे वह अच्छी माता है, जगत जननी है। अगर नजर पड़ते ही या अुसे अचानक या अिच्छापूर्वक छूनेके लिअे छूते ही जिसे विकार हो जाता है, वह ब्रह्मचारी नहीं है। अुसके लिअे सजीव पुतली और काठकी निर्जीव पुतली अेकसी होनी चाहिये। मगर जो स्त्रीका नाम सुनते ही विकारवश होता है और फिर भी ब्रह्मचर्यका पालन करनेको अुत्सुक है, अुसे तो काठकी पुतलीसे भी दूर भागना पड़ेगा।

अूपरके अनुसार स्त्री-पुरुष अेक ही आश्रममें रहें, साथ काम करें, अेक दूसरेकी सेवा करें और ब्रह्मचर्य रखनेकी कोशिश करें, तो अिसमें डर बहुत है। अिसमें अेक हद तक पश्चिमकी जानबूझ कर नकल है। अिस तरहके प्रयोग करनेकी अपनी योग्यतामें भी मुझे शक है। मगर यह तो मेरे सारे प्रयोगोंके बारेमें ही कहा जा सकता है। यह शंका बहुत जोरदार है, अिसीलिअे मैं किसीको अपना शिष्य नहीं मानता। समझबूझकर जो आश्रममें आये हैं, वे सब जोखिमोंको जानते हुअे भी साथीके रूपमें आश्रममें आये हैं। लड़कों और लड़कियोंको मैं अपने बच्चे मानता हूं। अिसलिअे वे सहज ही मेरे प्रयोगोंमें घसीटे जाते हैं। सब प्रयोग सत्यरूपी परमेश्वरके नामपर हैं। वह कुम्हार है और हम अुसके हाथमें मिट्टी हैं।

आज तकके आश्रमके अनुभवसे कह सकता हूं कि जो जोखिम अुठाकर ब्रह्मचर्य पालनेकी कोशिश जारी है, अुसमें निराशाका कारण नहीं मिला है। स्त्री-पुरुष दोनोंको कुल मिलाकर लाभ ही हुआ है। मगर मेरा खयाल है कि सबसे ज्यादा फायदा स्त्रियोंको हुआ है। प्रयोग करनेमें कुछ स्त्री-पुरुष सावधान रहे हैं, कुछ गिरकर अुठे हैं। प्रयोग मात्रमें ठोकर, ठेस तो लगनी ही होती

है। जिसमें सोलहों आने सफलता है, वह प्रयोग नहीं। वह तो सर्वज्ञका स्वभाव कहा जायगा।

जिसका दर्जा पहला है, अुसका जिक्र मैंने आखिरके लिअे रखा है। गीताके दूसरे अध्यायमें कहा है कि 'निराहारीके विषय तब तक भले ही दब गये दीखें, जब तक निराहार जारी रहे। मगर अुसका रस नहीं मिटता। वह तो तभी मिटेगा जब परके यानी सत्यके यानी ब्रह्मके दर्शन हो जायेंगे।' अिसमें निराहारीके बजाय संयमी शब्द समझना चाहिये, यानी वह सब अिन्द्रियोंके लिअे लागू होगा। अिस श्लोकमें अनुभवी कृष्णने पूर्ण सत्य कह दिया है। अुपवाससे लगाकर जितने संयमोंकी कल्पना की जा सकती हो, वे सब अीश्वरकी कृपाके बिना बेकार हैं। सत्य या ब्रह्मके दर्शनके क्या मानी? अिसमें अिन आंखोंसे देखनेकी बात नहीं। कोअी चमत्कार देखनेकी बात भी नहीं। ब्रह्मका दर्शन याने ब्रह्म हृदयमें निवास करता है अैसा अनुभव ज्ञान। यह न हो तब तक रस नहीं मिटता। अिसके आते ही रसमात्र सूख जाते हैं। अिस ज्ञानकी खातिर ही सारे व्रत हैं, सारी भावना है, आश्रमोंकी रचना है। यह ज्ञान लगातार अभ्याससे ही होता है। आशिक माशूककी खातिर बर्बाद होता देखा गया है। मगर चूंकि वह क्षणभरके भोगके लिअे पचता है, अिसलिअे अन्तमें अुसके भाग्यमें धूलकी धूल ही रहती है। मगर जिस लगनके साथ प्रेमी मेहनत करता है, अुससे भी ज्यादा लगन सत्यके दर्शनके लिअे चाहिये। और सत्यके दर्शनके अन्तमें परमानन्द है। फिर भी आशिककी-सी लगन थोड़े ही जिज्ञासुओंमें पायी जाती है। तब अगर वह दर्शन दुर्लभ हो तो शिकायत कैसी? माशूक हजारों कोस दूर भी हो सकता है। ब्रह्म तो हृदयमें ही है। अंगुलीसे नाखून

जितना अलग है, ब्रह्म तो अुतना भी अलग नहीं है। मगर जहाँ लड़का चालमें और टिंटोरा शहरमें हो, वहाँ क्या कहा जाय?

निराहारीका ब्रह्मचर्य फेंक देने लायक नहीं। अुसके रस अन्तमें क्षीण होते हैं। अुपवास करके, अुलटे सिर लटककर, हाथ मुखाकर, पैर सुखाकर — किसी भी तरह विषयोंकी निवृत्ति करनी ही है। अैसा करते करते सम्भव है रस लगभग मिट जायँ। अितनेमें ब्रह्मके दर्शन होंगे, और रसमात्र हमेशाके लिअे चले जायँगे। जिसे हमने खोया हुआ रत्न मान लिया है, वह मिल जायगा। जिसने मरते दम तक कोशिश न की हो, अुसे ब्रह्मको न देखनेकी शिकायत करनेका हक ही नहीं। ब्रह्मचर्यका पालन भी ब्रह्मको ढूँढनेका अेक जरिया है। अुसके बिना ब्रह्म नहीं मिलता और ब्रह्मके मिले बिना ब्रह्मचर्यका पूरा पालन नहीं हो सकता। अिसलिअे यहाँ निराहारकी मनाही नहीं की गयी है, अुसकी मर्यादा बतायी है।

२५-६-'३२

ब्रह्मचर्यके पालनका प्रयत्न आश्रममें छोटेबड़े, पति-पत्नी सभी करते हैं, फिर भी सब अुम्रभर पालनेवाले नहीं हैं। अैसे तो थोड़े ही हैं। लड़के और लड़कियाँ अुमर लायक हो जाते हैं, तब अुन्हें चेता दिया जाता है कि कोअी जबरन ब्रह्मचर्य पालनेके लिअे बँधे हुअे नहीं हैं। जो अुसका तेज सहन न कर सकें, अुन्हें शादी करनेका अधिकार है, और वे माँग करेंगे तो ठीक साथी खोज देनेमें आश्रम मदद करेगा। यह बात अितनी ज्यादा और अितनी बार साफ की गयी है कि अुसे सब अच्छी तरह समझते हैं। नतीजा भी बहुत अच्छा निकला है। नौजवान ज्यादा मात्रामें निभ रहे हैं। कन्यायें खासी अुम्र तक खींच ले जाती हैं। कोअी भी पन्द्रह सालसे नीचे तो ब्याही ही नहीं गयी है।

ज्यादातरकी शादी अुन्नीसके आसपास ही हुअी है । जो आश्रमकी मददसे शादी करना चाहते हैं, अुन्हे निहायत सादगीसे सन्तोष करना पडता है । भोज वगैरा नहीं होते । बरातियोंके तौरपर कोअी आ नही सकते । ढोल नगाड़ोंकी गुजायश नहीं । सिर्फ धार्मिक विधि ही होती है । वरकन्या खादीमय होने चाहियें । जेवर अेक भी नहो । वरकी तरफसे कन्याको कुछ देना नही पडता । कन्याको मॉबाप या सरक्षककी तरफसे पहननेके कपड़ों व चरखे वगैराके सिवा कुछ नही दिया जाता । विवाहमे दस रुपयेका भी खर्च नही होता । विधि अेक घटेसे ज्यादाकी नहीं होती । सप्तपदीके वचन वरकन्या मातृभाषामे बोलते हैं, और वे पहलेसे समझे हुअे होने चाहियें। शादीके दिन विवाहकी विधिसे पहले अुपवास रखते हैं, पेड़ोंको पानी पिलाते हैं, गोशालाकी सफाअी करते हैं, जलाशय साफ करते है, गीतापाठ करते हैं । कन्यादान करनेवाला भी दान करनेके वक्त तक अुपवास रखता है । अबसे यह भी आग्रह रखा गया है कि आश्रमके मारफत अेक ही जातिके बीच विवाह नही कराया जायगा । अुपजातियोंका बन्धन ढीला करनेकी गरजसे आश्रम अुपजातिके विवाहोको प्रोत्साहन नहीं देता और आश्रममें जो शादी करते हैं, अुन्हे अुपजातियोंसे बाहर जानेका अुत्तेजन दिया जाता है ।

अस्तेय और अपरिग्रह

अिन व्रतोंपर ज्यादा लिखनेकी जरूरत नही । पॉच बडे व्रतोंमेसे ये हैं । जो आत्मदर्शन करना चाहते हैं, अुनके लिअे ये जरूरी हैं । अिसलिअे अुन्हें आश्रमके व्रतोमे स्थान दिया गया है ।

२६–६–'३२

अस्तेय अिस व्रतके पालनके लिअे सिर्फ अितना ही काफी नहीं है कि दूसरेकी चीज अुसकी अिजाजतके बगैर न ली जाय। जो चीज हमें जिस कामके लिअे मिली हो, अुसके सिवा अुसे दूसरे काममें लेना, या जितने वक्तके लिअे मिली हो अुससे ज्यादा वक्त तक काममें लेना यह भी चोरी ही है। अिस व्रतकी बुनियादमें जो सूक्ष्म सत्य है वह यह कि परमात्मा प्राणियोंके लिअे हमेशाकी जरूरतकी चीजें ही हमेशा पैदा करता है और देता है। अुससे ज्यादा वह मूलमें पैदा ही नहीं करता। अिसका अर्थ यह हुआ कि अपनी कमसे कम जरूरतके सिवा मनुष्य जितना भी लेता है, वह चोरी करता है।

अपरिग्रह अपरिग्रह अस्तेयका अंग है। गैरजरूरी चीजें जैसे ली नहीं जानी चाहियें, वैसे ही अुनका संग्रह भी नहीं होना चाहिये। याने जिस खुराक या टेबल कुर्सीकी हमें जरूरत न हो, अुनका संग्रह करना अिस व्रतका भंग करना है। जिसका कुर्सीके बिना काम हो सकता है, अुसे कुर्सी रखनी ही न चाहिये। अपरिग्रही अपना जीवन हमेशा सादेसे सादा बनाता जाय।

अपरिग्रह और अस्तेय मनकी स्थितियाँ ही हैं। शरीरधारीके लिअे अुनका पूरा अमल नामुमकिन है। शरीर खुद ही परिग्रह है। और जब तक वह है, तब तक दूसरे परिग्रहोंकी आशा रखता ही है। कितने ही परिग्रह अनिवार्य हैं। 'कितने ही' की तादाद भी हर मानसिक स्थितिके अनुसार होगी। जैसे जैसे वह अिन व्रतोंकी तरफ मुड़ती जायगी, वैसे वैसे अिन्सान शरीरका मोह छोड़ता जायगा और अपनी जरूरतें घटाता जायगा। सबके लिअे अेक ही माप मुकर्रर नहीं किया जा सकता। चींटीका परिग्रह दूसरा ही होगा।

कणसे ज्यादा जमा करनेवाली चींटी परिग्रही है। हज़ारों कण समा जायँ अितनी घास जिस हाथीके सामने पडी हो, अुसे परिग्रही नही माना जा सकता।

अैसी परेशानियोंसे मौजूदा सन्यासका ख़याल पैदा हुआ मालूम होता है। अैसे सन्यासका पालन करना आश्रमका ध्येय नहीं। किसीके लिअे अैसा सन्यास जरूरी भले ही हो। भले किसीमें दिगम्बर बनकर, समाधि लगाकर, गुफामें बैठकर विचारमात्रसे जगतका कल्याण करनेकी शक्ति हो। सभी गुफामें बैठ जायँ, तो नतीजा खराब ही होगा। साधारण स्त्रीपुरुषोंके लिअे मानसिक सन्यास ही सम्भव है। दुनियामें रहते हुअे भी सेवाभावसे और सेवाके लिअे ही जो जीता है, वह सन्यासी है।

अैसा सन्यास प्राप्त करनेकी आश्रमको आशा है। वह अुसी तरफ जा रहा है। अिस मानसिक सन्यासमें जरूरी चीजें जमा रखनी पड़ती हैं, फिर भी परिग्रहमात्रके (शरीर तकके) त्यागकी तैयारी होनी चाहिये, यानी अेक भी वस्तुके जानेसे चोट न लगनी चाहिये। और जब तक शरीर है तब तक जो सेवाका काम आये वह किया जाय। खाने-पहननेको मिले तो ठीक, न मिले तो भी ठीक। अैसी परीक्षाका समय आये, तब कोअी आश्रमवासी हारे नहीं। अिस तरह मनको तैयार करनेकी कोशिश जारी है।

शारीरिक श्रम

हर स्त्रीपुरुष शरीरसे मेहनत करे, आश्रम अिसे धर्म मानता है। अिस अुसूलकी जानकारी या सूझ मुझे टॉल्स्टॉयके अेक लेखसे हुअी। अुन्होंने रूसके लेखक बाडारेफके बारेमें लिखते हुअे

बताया कि रोटी-श्रमकी जरूरत अिस लेखककी अिस युगकी बड़ी खोजोंमेंसे अेक थी। अुसका मतलब यह है कि हर तन्दुरुस्त आदमीको अपने पेटके लायक शरीर-श्रम करना ही चाहिये। मनुष्यको अपनी बुद्धिकी शक्तिका अुपयोग आजीविका या अुससे ज्यादा प्राप्त करनेके लिअे नहीं, बल्कि सेवाके लिअे, परोपकारके लिअे करना चाहिये। अिस नियमकी पाबन्दी सारी दुनिया करने लगे तो सहज ही सब बराबर हो जायँ, कोअी भूखों न मरे और जगत बहुतसे पापोंसे बच जाय।

यह सम्भव है कि अिस सुवर्ण नियमका अमल सारी दुनिया किसी भी समय न कर सके। नियमको जाने बूझे बिना तो करोड़ों अुसका पालन जबरदस्ती करते हैं। अुनके मन अुसके विरुद्ध चलते हैं, अिसीलिअे वे दुःख पाते हैं और अुनकी मेहनतका जितना फायदा दुनियाको होना चाहिये अुतना नहीं होता। जो लोग अिस नियमको समझते हैं, अुन्हें अिस ज्ञानसे अुसका पालन करनेका प्रोत्साहन मिलता है। अिस नियमका पालन करनेवाले पर अुसका असर चमत्कारी होता है, क्योंकि अुसे परम शान्ति मिलती है, अुसकी सेवा शक्ति और तन्दुरुस्ती बढ़ती है।

मुझपर टॉलस्टॉयका असर बहुत हुआ और अुनकी बातोंपर जहाँ तक हो सकता था अमल करना तो मैंने दक्षिण अफ्रीकामें ही शुरू कर दिया था।

आश्रम कायम हुआ तभीसे रोटी-श्रम मुख्य हो गया।

गीताका अध्ययन करनेपर मैं अिसी नियमको गीताके तीसरे अध्यायमें यज्ञके रूपमें देखता हूँ। मैं यह नहीं कहना चाहता

कि यज्ञका अर्थ शरीर-श्रम ही है। मगर अिस भावमें, कि यज्ञसे पर्जन्य होता है, मुझे शरीर-श्रमका धर्म दीखता है। यज्ञसे बचा हुआ अन्न वही है, जो मेहनत करनेके बाद मिलता है। गुजारेके लायक मेहनतको गीताने यज्ञ कहा है। पोषणके लिअे जितना चाहिये, अुससे ज्यादा जो खाता है, वह चोरी करता है, क्योंकि अिन्सान गुजारेके लायक श्रम भी मुश्किलसे ही करता है। मैं मानता हूँ कि अिन्सानको गुजारेसे ज्यादा लेनेका हक ही नहीं है। और जो मेहनत करते हैं, अुन सबको अुतना लेनेका अधिकार है, जितनेसे शरीर कायम रहे।

अिससे कोअी यह न कहे कि अिसमे मेहनतके बँटवारेकी गुजायश ही नहीं। मनुष्यकी जरूरी आवश्यकताओंके लिअे जो भी चीज़ तैयार होती है, अुसमे शरीर-श्रम तो लगता ही है। अिसलिअे श्रम चाहे किसी भी जरूरी क्षेत्रमें किया जाय वह रोटी-श्रम ही है। अितनी मेहनत भी सब नहीं करते, अिसलिअे तन्दुरुस्ती बनाये रखनेके लिअे व्यायामके नामसे खास तौरपर शरीर-श्रम करना पड़ता है। जो रोजमर्राके लायक मेहनत खेतीमें करता है, अुसे अलग व्यायामकी जरूरत नहीं रहती। किसान तन्दुरुस्तीके दूसरे नियम पाले, तो वह बीमार ही न पड़े।

यह देखा जाता है कि अिस दुनियामें अिन्सानको रोज जितना चाहिये, अुतना कुदरत रोज पैदा करती है। अुसमेसे अगर कोअी अपनी ज़रूरतसे ज्यादा काममे लेता है, तो अुसके पडोसीको भूखा रहना ही पड़ेगा। बहुत लोग अपनी आवश्यकतासे अधिक लेते हैं, अिसीलिअे दुनियामें भूखों मरनेकी नौबत आती है। हम कुदरतकी देनको किसी भी तरह काममें लें, फिर भी कुदरत तो दोनों पलड़े बराबर रखती ही है। कुदरतके बहीखातेमें न जमा

बाकी है, न नामे बाकी। वहाँ तो रोज आमदखर्च बराबर होकर शून्य बाकी रहता है। अिस शून्यमें हमें शून्यके समान होकर समा जाना है।

अूपरके नियमसे यह बात बाधक नहीं है कि कभी रसायनों और यंत्रोंके जरिये मनुष्य जमीनसे ज्यादा फसल पैदा करता है, मेहनतसे दूसरी तरह अनेक वस्तुयें अुत्पन्न करता है। यह कुदरतकी शक्तियोंका रूपान्तर है। सबका आखिरी नतीजा तो शून्य ही होनेवाला है। ये राजके आँकडे मिलानेके लिअे हमारे पास काफी साधन नहीं है। मगर जो कुछ हमें रोज अनुभव होता है, अुसीका पृथक्करण किया जाय, तो अुससे यही अनुमान होता है कि दोनों पलडे बराबर हैं।

कुदरत अैसा करती हो या नहीं, मेरी दूसरी दलीलोंमें सार हो या न हो, आश्रममें रोटी-श्रमके नियमका अधिकाधिक पालन किया गया है। अिसमें आश्चर्यकी कोअी बात नहीं। अमल करनेका साधारण आग्रह हो तो अमल आसान है। अगर कुछ खास घण्टोंमें मजदूरीके सिवा दूसरा काम ही न हो, तो मजदूरी होगी ही। फिर भले ही अुनमें आलस्य हो, कार्यदक्षता न हो, मन न हो। मगर कुछ घण्टे पूरे तो होंगे ही। फिर, कुछ मजदूरियाँ तुरन्त फल देनेवाली होती हैं, अिसलिअे बहुत आलस्यकी गुंजायश भी नहीं रहती। श्रमप्रधान संस्थाओंमें नौकर होते नहीं या थोडे ही होते हैं। पानी भरना, लकडी फाडना, दियाबत्ती तैयार करना, पाखाने और रास्ते साफ करना, मकानोंकी सफाअी रखना, अपने अपने कपडे धोना, रसोअी करना वगैरा अनेक काम तो अैसे हैं जो होने ही चाहियें।

अिनके सिवा खेती, वुनाअी, अुनके सम्बन्धका और दूसरी तरह जरूरी बढअीका काम, गोशाला, चमारखाना वगैरा काम आश्रमके साथ मिले हुअे हैं। अुनमें थोड़े वहुत आश्रमवासियोंके लगे विना काम नहीं चल सकता।

ये सव काम रोटी-श्रमके नियमकी पावन्दीके लिअे काफी माने जायेंगे। मगर यज्ञका दूसरा हिस्सा परमार्थ या सेवाकी वृत्ति है। अुसे अिन कामोंमें दाखिल करते वक्त आश्रमकी खामी जरूर मालूम होगी। आश्रमका आदर्श सेवाके लिअे ही जीना है। अिस ढंगसे चलनेवाली सस्थामे आलस्यका, कामकी चोरीका स्थान नहीं है। वहाँ सव काम तनमनसे होने चाहियें। अैसा सभी करते होते तो आज आश्रमकी सेवाकी योग्यता वहुत बढ गयी होती। लेकिन अैसी सुन्दर स्थितिसे आश्रम अव भी वहुत दूर है। अिसलिअे यद्यपि आश्रमका हर काम यज्ञरूप है, फिर भी आदर्शका विचार करके दरिद्रनारायणके लिअे कमसे कम अेक घण्टेकी कताअीको जरूरी स्थान दिया गया है। यह कताअी जिनका शरीर काम कर सकता है, अुन सवके लिअे लाजिमी है। अिस हालत तक पहुँचनेमें काफी मेहनत पड़ी है। लेकिन अिसका वर्णन खादीके कामका विचार करते समय ज्यादा ठीक रहेगा।

यह आरोप समय समयपर सुना गया है और अव भी सुना करता हूँ कि श्रमप्रधान संस्थामें बुद्धिके विकासकी गुंजायश नहीं रहती। अिसलिअे वह जड़ वन जाती है। मेरा अनुभव अिससे अुलटा है। आश्रममें जितने भी आये हैं, सभीकी बुद्धि कुछ तेज हुअी है, किसीकी भी मन्द हुअी हो यह नहीं मालूम हुआ।

अक्सर यह अर्थ किया जाता है कि जगत्की अनेक घटनाओंका माना हुआ बाहरी ज्ञान ही बुद्धि

२७-६-'३२

है। मुझे यह मानना पड़ेगा कि ऐसी बुद्धि आश्रममें कम विकसित होती है। लेकिन अगर बुद्धिका अर्थ समझ, विवेक वगैरा हो, तो वह आश्रममें काफी विकसित होती है। जहाँ मजदूरके रूपमें मेहनत सिर्फ गुजारेके खातिर होती है, वहाँ मनुष्यका जड़ बन जाना मुमकिन है। अमुक चीज किस लिअे या किस तरह होती है, अिस बारेमें अुसे कोअी ज्ञान नहीं देता, अुसे खुद जिज्ञासा नहीं होती, अपने काममें दिलचस्पी नहीं होती। आश्रममें अिससे अुलटा होता है। हर काम — पाखाना सफाअी तक — समझकर करना पड़ता है। अुसमें दिलचस्पी रखी जाती है। वह परमेश्वरकी खातिर होता है। अिसलिअे अुसे करते हुअे भी बुद्धिके विकासकी गुंजाअिश रहती है। सबको अपने अपने विषयका पूरा ज्ञान प्राप्त करनेका प्रोत्साहन दिया जाता है। जो यह ज्ञान लेनेकी कोशिश नहीं करते, अुनके लिअे वह दोष माना जाता है। आश्रममें सभी मजदूर हैं या कोअी भी मजदूर नहीं।

यह मानना कि किताबोंसे ही, मेज कुर्सीपर बैठनेसे ही ज्ञान मिलता है, बुद्धिका विकास होता है, घोर अज्ञान है, वहम है। अिससे हमें तो निकल ही जाना चाहिये। जीवनमें अध्ययनके लिअे स्थान जरूर है, मगर वह अपनी जगहपर ही शोभा देता है। शरीरश्रमको हानि पहुँचाकर अुसे किया जाय तो अुसके खिलाफ विद्रोह करना फर्ज हो जाता है। शरीरश्रमके लिअे दिनका ज्यादा वक्त देना चाहिये और पढ़ाअी वगैराके लिअे थोड़ा। आजकल अिस देशमें जहाँ अमीर लोग या ऊँचे वर्णके माने

जानेवाले लोग शरीरश्रमका अनादर करते हैं, वहाँ शरीरश्रमको अूँचा दरजा देनेकी बड़ी जरूरत है। और बुद्धिशक्तिको सच्चा वेग देनेके लिअे भी शरीरश्रमकी यानी किसी भी अुपयोगी शारीरिक धन्धेमें शरीरको लगानेकी जरूरत है।

अगर पढाअीको आश्रम कुछ ज्यादा वक्त दे सके, तो देने लायक है। बेपढे आश्रमवासियोको शिक्षककी मदद मिल सके, तो वह भी दी जानी चाहिये। फिर भी अैसा लगता रहा है कि जो जो काम आश्रममें हो रहे है, अुनको नुकसान पहुँचाकर पढाअी वगैरामें वक्त न लगाया जाय। शिक्षक तनखाहदार तो रखे नहीं जाते। और जब तक मौजूदा शिक्षा देनेवाले ज्यादा शिक्षकोंको आश्रम अपनी तरफ खींच न सके, तब तक जितने हैं अुन्हींसे काम चलाया जाता हे। स्कूलो और कालेजोंमें पढे हुअे जो लोग आश्रममें हैं, वे श्रमके साथ पढाअीको मिला देनेकी कलामें पूरी तरह दक्ष नहीं हैं। हम सबके लिअे यह नया प्रयोग है। मगर अनुभवसे समतोल बढता जा रहा है। और जैसे जैसे व्यवस्थाशक्ति बढती जायगी, वैसे वैसे अभी जो साधारण शिक्षा पाये हुअे हैं, अुन्हें अपनी मेहनतसे पाया हुआ ज्ञान दूसरोंको देनेका अुपाय सूझ पड़ेगा।

स्वदेशी

स्वदेशीको आश्रम सार्वभौम धर्म मानता है। हर अिन्सानका पहला फर्ज अपने पडौसीके प्रति है। अिसमें परदेशीके प्रति द्वेष नहीं और स्वदेशीके लिअे पक्षपात नहीं। शरीरधारीकी सेवा करनेकी शक्तिकी मर्यादा होती है। वह अपने पड़ौसीके लिअे भी मुश्किलसे फर्ज पूरा कर सकता है। अगर पडौसीके प्रति सब अपना धर्म

ठीक ठीक पालन कर सके, तो दुनियामें कोअी मददके बिना दुःख न पावे । अिसलिअे यह कहा जा सकता है कि मनुष्य पड़ौसीकी सेवा करके दुनियाकी सेवा करता है । असलमें तो अिस स्वदेशीमें अपने परायेका भेद ही नहीं । पड़ौसीके प्रति धर्मपालन करनेका अर्थ है जगतके प्रति धर्म पालन । और किसी तरह दुनियाकी सेवा हो ही नहीं सकती । जिसके खयालमें सारा जगत ही कुटुम्ब है, अुसमें अपनी जगहपर रहकर भी सबकी सेवा करनेकी शक्ति होनी चाहिये । वह तो पड़ौसीकी सेवाके जरिये ही हो सकती है । टॉल्स्टॉय तो अिससे भी आगे बढ़कर कहते हैं कि अभी तो हम अेक दूसरेके कन्धेपर चढ़ बैठे हैं । हम दूसरेके कन्धेसे अुतर जायँ तो बस है । यह कथन अुसी बातको दूसरी तरह बताता है । अपनी सेवा किये बिना कोअी दूसरेकी सेवा करता ही नहीं । और दूसरेकी सेवा किये बिना जो अपनी ही सेवा करनेके अिरादेसे कोअी काम शुरू करता है, वह अपनी और समाजकी हानि करता है । कारण स्पष्ट है । हम सभी जीव अेक दूसरेके साथ अितने ज्यादा मिले हुअे हैं कि जो कुछ अेक करता है अुसका अच्छा बुरा असर सारे जहानपर पड़ता ही है । हमारी तंग नजरके कारण भले ही हम देख न सकें, भले ही अेक व्यक्तिके कामका असर अिस संसार-सागरमें नहींके बराबर हो, मगर वह होता है जरूर । हमें अपनी जिम्मेदारी समझनेके लिअे अितना ज्ञान काफी होना चाहिये ।

अिसलिअे शुद्ध स्वदेशी धर्म विदेशीके विरुद्ध नहीं । फिर भी स्वदेशी सर्वदेशी नहीं । नहीं, अिसलिअे कि अैसा होना असम्भव है । 'सब' का करने जायँ तो वह तो होता नहीं और 'अपना' भी जाता रहता है । अपना करते रहनेमें सबका होता ही रहता है ।

सबका करनेका अेक यही अुपाय है। 'मेरे लिअे सब बराबर हैं,' यह कहनेका अधिकार अुसीको है, जिसने पड़ौसीके प्रति अपना धर्म पाला हो। 'मेरे लिअे सब बराबर हैं,' यह कहकर जो पडौसीका तिरस्कार करता है और अपने शौक पूरे करता है, वह स्वेच्छाचारी है, स्वच्छंद है। वह अपने ही लिअे जीता है।

हम कितने ही साधु पुरुषोंको अपना स्थान छोड़कर सारी दुनियाका भ्रमण करते और 'परदेशियों' की सेवा करते देखते हैं। वे बुरा करते है या स्वदेशी धर्मके लिअे अपवाद हैं, सो बात नहीं। अुनकी शक्ति अुनके हाथसे ज्यादा सेवा कराती है। किसी अिन्सानके लिअे अुसके पास रहनेवाला आदमी ही पडौसी है। दूसरेकी मर्यादा अपने गाँव तक होती है। तीसरेकी अपने आसपासके दस गाँवों तक जा सकती है। अिस तरह सब अपनी अपनी ताकतके अनुसार काम करेंगे। साधारण मनुष्यकी पहुँच साधारण ही होती है। व्याख्या अैसी ही रची जानी चाहिये जो अुसे लागू की जा सके। अिस व्याख्याके भावार्थमें वे सब बातें समा सकती हैं, जो अुसके शब्दार्थके विपरीत न हों। साधारण आदमी यह नही मानता कि वह स्वदेशीका पालन करके किसीकी सेवा करता है। अपने पडौसीके साथ वह व्यापार अिसलिअे करता है कि अुसमे अुसे सुविधा रहती है। यह मानना सही ही है। परन्तु अिस सुविधामें कअी बार अड़चन भी पाअी जाती है। जो स्वदेशीको धर्म समझता है, वह वैसे समयमे भी अुसका पालन करेगा। आजकल बहुतोंको अपने देशकी ही बनी हुअी चीजोंसे सन्तोष नहीं होता। कअी तरहके प्रलोभन दिखाअी देते हैं, अिसलिअे बहुत लोग विदेशी चीजें लेनेमे अपनी सुविधा देखते हैं। अैसे समय बताना पड़ता है कि स्वदेशी सहूलियत

ही नहीं, धर्म भी है। आज हिन्दुस्तानमें अैसी ही हालत है। अिसी लिअे यहाँ स्वदेशी धर्म जाननेकी जरूरत पैदा हुअी है। स्वदेशीका हिंसक अर्थ, दूसरे देशोंकी जनताके द्वेषका अर्थ, बिलकुल त्याज्य है। किसीका बुरा करना या चाहना धर्म हो ही नहीं सकता।

अिस स्वदेशी धर्मका पालन आश्रमके व्रतोंमेंसे अेक है।

अिस स्वदेशीका साकार रूप मैंने खादीको माना है, क्योंकि अिसे छोड़कर ही हिन्दुस्तानने घोर पाप किया है, अपना स्वाभाविक धर्म छोड़ दिया है। खादीकी आवश्यकताके बारेमें दूसरे स्थानपर और दूसरे समय बहुत कुछ लिखा जा चुका है। यहाँ तो अितना ही बतलानेके लिअे जिक्र किया गया है कि अुसका आश्रमके साथ सम्बन्ध कैसे हुआ। लेकिन अिस जिक्रमें खादीके कामकी शुरुआतका अितिहास आ जाता है।

सन् १९०८में मुझे खादी-धर्म और चरखा-धर्म सूझा। अुस वक़्त मुझे खयाल भी न था कि चरखा कैसा होता है। मैं चरखे और करघेका फर्क नहीं जानता था। हिन्दुस्तानके गाँवोंकी हालतका मुझे थोड़ा ही ज्ञान था। मगर यह मैं साफ देख सका था कि हिन्दुस्तानके देहातोंके कंगाल होनेका मुख्य कारण चरखेका नाश है। मेरे मनमें गाँठ बैठ गयी थी कि हिन्दुस्तान जाअूँगा तब चरखेका प्रचार करूँगा।

१९१५में जब मैं देशमें आया, तब मनमें यह विचार तो भरा ही था। आश्रम कायम हुआ तभीसे स्वदेशी व्रत शुरू हुआ। पर हममें कोअी यह न जानता था कि सूत कैसे कातते हैं। अिसलिअे हाथका करघा लगाकर सन्तोष किया। सबके दिलोंसे बारीक कपड़ेका मोह मिटा नहीं था। स्त्रियोंकी साड़ी बुनने लायक स्वदेशी सूत तो मिलना ही न था। अिसलिअे

बहुत थोडे समयके लिअे विदेशी सूतसे बुनाअी करते थे। कुछ बारीक सूत देशी मिलका लिया और विदेशीको विदा किया।

आश्रममे करघा बैठानेमे भी मुश्किल तो खूब थी ही। हमें किसीको बुननेका ज्ञान नही था, मित्रोंके जरिये करघा जुटाया और सिखानेवाला जुलाहा खोजा। सीखनेका भार मगनलाल पर आया।

जैसे जैसे मैं आश्रममें प्रयोग करता रहा, वैसे वैसे देशमें स्वदेशीका प्रचार भी करता रहा। लेकिन जब तक सूत न कते तब तक सब मामला दूल्हे बिना बरातवाला ही लगा। अन्तमें चरखा मिला, कातनेवाली मिली और चरखा आश्रममे जारी हुआ। यह हकीकत 'सत्यके प्रयोग' में आ गयी है।[८]

कोअी यह न समझे कि चरखा मिलते ही सब मुश्किलें दूर हो गयी। यह भी कहा जा सकता है कि मुश्किलोंका बारीक ज्ञान हुआ, अिससे छुपी हुअी मुश्किलें सामने आयीं यानी बढी।

देशमे घूमते वक्त देखा कि चरखेकी बात करते ही लोग अुसे अपना लें सो बात नही। यह पता था कि अुससे कमाअी थोडी ही होती है, मगर यह पता न था कि कितनी कम होती है। अुसमेसे सूत अेकसा और बारीक तुरन्त नही निकलता। बहुतसी स्त्रियाँ तो मोटापतला ही निकालेगी। फिर यह भी देखा कि वह कच्चा होता है। चाहे जैसी रूअीसे काम नही चलता। अुसे पींजना पडता है, पूनियाँ बनानी पड़ती हैं। मगर पींजनेका आधार भी अिस बातपर है कि रूअी कैसी स्थितिमे मिली है। चरखे भी चाहे जैसे हों तो काम नहीं चलता। अिसलिअे चरखेका पुनरुद्धार होना चाहिये, यानी अेक बडी योजना बनानी चाहिये।

अकेला धन काम नहीं आता, और दो आदमियोंके धनका भी यह काम नहीं। सैकड़ों सेवक मिलें तभी काम बने। सेवक भी मामूली दर्जेके नहीं चाहियें। वे अैसे होने चाहियें जो नया शास्त्र सीखनेको तैयार हों, थोड़े गुजारेमें सन्तोष करें और देहातका जीवन बितायें। अितना भी काफी नहीं था। देहातियोंमें आलस्य, निराशा और अविश्वास छा गया है। ये न मिटें तो चरखा जागे न हो। अिसलिअे चरखेको सफल करनेके लिअे सेवकों और सेविकाओं दोनोंकी पूरी शक्तिकी जरूरत है। और साथ साथ अटूट धीरज और अटल श्रद्धा न हो तो चरखा नहीं चल सकता।

कहना चाहिये कि अिस श्रद्धामें पहले तो मैं अकेला ही था। मगर श्रद्धाके सिवा मेरे पास दूसरी सम्पत्ति नहीं थी। मैंने देखा कि जहाँ श्रद्धा होती है, वहाँ दूसरे सामान अपने आप आ जाते हैं। श्रद्धाके अनुसार ही बुद्धि सूझती है, मेहनत आती है। यह तो साफ ही था कि तमाम प्रयोग आश्रममें और आश्रमके द्वारा ही होंगे। आश्रमकी हस्ती ही अिसलिअे थी। मैंने देखा कि आश्रमकी मुख्य बाहरी प्रवृत्ति चरखा ही हो सकता था। चरखेका शास्त्र रचनेका दूसरा अुपाय ही नहीं था। अिसलिअे अन्तमें कातनेकी क्रियाको महायज्ञ माना गया और जो आश्रममें आता, अुसे कातना सीखकर वह यज्ञ तो करना ही पड़ता था।

लेकिन यज्ञका अर्थ है काम करनेमें कुशलता प्राप्त करना। जैसे तैसे कात लेनेका नाम यज्ञ नहीं है। अिसलिअे पहले तो कमसे कम आध घंटे तक कातनेका तय हुआ। लेकिन जल्दी ही मालूम हुआ कि चरखा बिगड़ जाय, तो आध घंटेमें तीन तार भी नहीं निकल सकते। अिसलिअे यह तय हुआ कि कमसे कम १६० तार तो निकलने ही चाहियें। अेक तार यानी ४ फुट सूत।

लेकिन सूत मोटा पतला हो, तो किस कामका? अिसलिअे सूतकी समानता, मजबूती वगैरा पर जोर दिया जाने लगा। और अब तो अिस हद तक पहुँच गये हैं कि बीस नंबरसे कमका सूत हो, तो अुसकी यज्ञमें गिनती नहीं हो सकती।

मगर अच्छेसे अच्छे सूतका अुपयोग कौन करे? मै तो पहलेसे ही समझता था कि अिस सूतका अिस्तेमाल यज्ञके लिअे कातनेवाले तो हरगिज नही कर सकते। मगर यह घूँट मै सबकें गले नही अुतार सका। सूतकी मजदूरी खुद चुका दे और खरीद ले तो क्या हर्ज है? अैसा करनेसे अच्छेसे अच्छा सूत कतेगा, अिस लालचसे मैने मनको यों समझा लिया कि मजदूरी चुकाकर अपना काता हुआ सूत खरीद ले तो भी यज्ञ किया माना जायगा। यह दोष ये पंक्तियाँ लिखते वक्त भी बिलकुल दूर नही हो सका है। जो दोष शुरूमे ही नही मिट जाता, वह घर कर लेता है। और फिर जैसे घर किये हुअे रोगको दूर करनेमें मुश्किल होती है, वैसी ही अैसे दोषको निकालनेमे भी होती है।

यह कहा जा सकता है कि" अिस यज्ञके नतीजेके रूपमें ही चरखेका काम लगभग हिन्दुस्तान भरमें फैल गया है। मगर यह नही कहा जा सकता कि अुसने गाँव गाँवमे घर कर लिया है। अिसका कारण मै तो अच्छी तरह देख सकता हूँ। मेरी श्रद्धाके साथ ज्ञान बिलकुल नही था। भूलें करते करते, ठोकरें खाते खाते थोडासा ज्ञान मिला। साथी मिले, मगर यह नही कह सकते कि अिस महान कार्यके लिअे काफी हे। सैकडों सेवक तैयार हुअे हैं, मगर यह भी नहीं कहा जा सकता कि अुनमें अटूट श्रद्धा या ज्ञान है। जहाँ मूल काम ही अभी कमजोर है, वहाँ पूरे फलकी आशा नही रखी जा सकती।

लेकिन अिसमें मेरे ख्यालसे किसीका कसूर नहीं । नया काम है, महासागर जैसा विशाल है, अुसमें कठिनाअियोंका पार नहीं । अिसलिअे जितना हुआ, अुससे सन्तोष तो नहीं माना जा सकता, फिर भी यह श्रद्धा कायम रखनेके लिअे तो काफी ही है । सुफलताकी आशा पूरी तरह रखी जा सकती है । अितना ज्ञान मिला है और अितने श्रद्धालु सेवक-सेविकायें पैदा हो गयी हैं कि यह काम अब नष्ट तो नहीं होगा, यह जरूर कहा जा सकता है ।

अिस अेक कामके साथ दूसरे छोटे काम आश्रममें और देशमें अितने ज्यादा पैदा हुअे हैं कि अुनका अितिहास लिखें, तो अिस प्रयासकी सीमा लाँघी जा सकती है। मैंने यह नहीं सोचा है कि आश्रमका अितिहास देते हुअे अुसके सभी विभागोंका भी अितिहास देनेका साहस करूँ । लेकिन थोड़ेमें यहाँ बता दूँ कि अुसके सिलसिलेमें कपासकी खेती होती है, बढ़अीखाना चलता है, रँगाअीका काम होता है, ओटनेसे लगाकर बुनाअी तकके औजार बनते हैं । अुनमें सुधार हुअे हैं और अब भी हो रहे हैं । चरखेकी किस्म सुधारनेमें जो प्रगति हुअी है, वह तो मुझे अेक काव्य-जैसी लगती है ।

अछूतपन

सत्यका आग्रह रखनेके लिअे और अुसके लिअे मरना पड़े तो मरनेकी कला सीखनेके लिअे जो आश्रम स्थापित हुआ अुसमें अछूतपनको कलंक मानते हुअे भी अुसे दूर करनेकी रचनात्मक प्रवृत्ति न की जाय, तो फिर यह सत्याग्रह आश्रम कैसे कहला सकता है ? अछूतपनको पाप मानना मैं और मेरे

साथी लोग दक्षिण अफ्रीकामें ही सीख गये थे । अिसलिअे यहाँ आश्रन कायम होते ही अछूतपनको मिटाना आश्रमका अेक बड़ा काम हो गया ।

आश्रम स्थापित होनेके बाद अेक महीनेके भीतर ही दूदाभाअीने कुटुम्ब सहित आश्रममें रहनेकी माँग की । मै नहीं सोचता था कि अितनी जल्दी आश्रमकी परीक्षा होगी । दूदाभाअीको भरती करनेकी सिफारिश श्री० अमृतलाल ठक्करने की थी । अुनकी सिफारिशवाले परिवारको मुझे अपना ही लेना चाहिये । अिसलिअे मैंने अुसे आनेको खत लिख दिया । अिस कुटुम्बके आते ही खलबली मच गयी । पहले तो मैंने देखा कि आश्रममे जो परिवार रहते थे, अुन्हींमें कहीं कहीं अछूतोंके साथ परहेज रहता था । मेरी ही पत्नीमे, हालाँ कि अिस बाबत दक्षिण अफ्रीकामे बहुत कष्ट सहना पड़ा था, छुआछूत बाकी थी । मगनलाल-जैसे बहादुर आदमीने देखा कि अुसमे भी गहराअीमें यह दोष रह गया है । अुसकी पत्नीमें तो और भी ज्यादा था । यहाँ तक नौबत आयी कि मेरी पत्नी या तो आश्रम छोड दे या आश्रमके कडे नियमका पालन करे । छुआछूत रखनेवाले सम्बन्धियोंने अुसे समझाया कि पतिके पीछे चलनेवाली स्त्रीको पाप लगता ही नहीं । पर न चलनेसे जरूर लगता है । अिस खयालने असर किया और वह शान्त हो गयी । मै खुद यह नही मानता कि पत्नीका पतिके पापमें साथ देना किसी भी तरह धर्म है । मगर यहाँ मैंने पत्नीके सहयोगका स्वागत किया, क्योंकि मै अछूतपन मिटाना पुण्यका काम समझता था । अस्पृश्यता-निवारण आश्रममें रहनेकी अेक लाजमी शर्त थी । अिसलिअे अगर अिस शर्तका पालन न करे, तो मेरी पत्नीको आश्रमके बाहर रहना ही पड़े । यह मेरे लिअे दु खदायक तो था ही ।

जिसने आज तक मेरे सुखदु:खमें बड़ी तकलीफ अुठाकर साथ दिया था, अुसका वियोग सहन करना भारी कष्ट था। मगर धर्मपालनके लिअे कैसे भी संकट आयें, अुन्हें सहना ही था। अिसलिअे स्वतंत्र रूपसे नहीं, पर पत्नी-धर्मके नाते पत्नीने जब छुआछूतको छोड़ दिया, तो मुझे अुसे स्वीकार करनेमें संकोच नहीं हुआ।

मगनलालकी परीक्षा मुझसे कड़ी थी। अुसने तो क्षणभरमें आश्रम छोड़नेकी हिम्मत करनेका विचार कर लिया। सामान बाँधकर वह मुझसे अिजाजत लेने आया। मैं अिजाजत कैसे देता? मैंने मगनलालको सावधान किया। आश्रम खड़ा करनेमें जितना मेरा हाथ था, अुतना ही अुसका था। अपना रचा हुआ खुद ही कैसे छोड़े? छोड़नेका अर्थ आश्रमका नाश करना था। वह नाश नहीं चाहता था। अपनी बनाअी चीजको छोड़नेकी अिजाजत मुझसे क्या लेनी थी? मगर अुससे आश्रम छोड़ा ही नहीं जा सकता था। अितना कहना मगनलालके लिअे बहुत हो गया। यह लिखते वक्त मुझे अैसा लगता है कि अुसने तो मेरा रास्ता साफ करनेके खयालसे ही यह कदम अुठाना ठीक समझा होगा। और सबका वियोग बर्दाश्त हो सकता था, मगर मगनलालका वियोग सहन करना मुश्किल बात थी। अिसलिअे मैंने मगनलालको कुटुम्ब सहित मद्रास जानेकी बात कही। वहाँ जाकर दोनों शान्त हों और बुनाअीकी कलाका ज्यादा ज्ञान प्राप्त करें। आश्रममें जो मददगार आये थे, अुन्होंने अेक हदसे आगे सिखानेसे अिनकार कर दिया। अुन्हें यह निरर्थक डर लगा कि अैसा करनेसे अुनका धन्धा खतम हो जायगा। मद्रासमें स्व० त्यागराज चेट्टीने अपने हाथकी बुनाअीके कारखानेमें मगनलाल गांधीको सीखनेके लिअे रख लिया था। मगर मद्रासके कारीगरको भी अहमदाबादमें मिले

कारीगरकी ही तरह वहम था। अिसलिअे कारीगर दिल खोलकर अपनी कारीगरी नहीं सिखाते थे। मगनलालमें वशीकरण शक्ति ज्यादा थी, अुसका ज्ञान भी अधिक था। मै मानता था कि वह देख देखकर भी बहुत सीख लेगा। अिसके सिवा दक्षिणके साथ सीधा सम्बन्ध भी जोडना ही था। मगनलालको मद्रास भेजनेके लिअे अुसके धर्मसकटका बहाना भी मुझे मिल गया। और मैने अुसे पकड़ लिया। मगनलालको और अुसकी पत्नीको मेरी सूचना पसन्द आ गयी। वे मद्रास गये और वहाँ कोअी छह मास रहे। बुननेकी कला अच्छी तरह सीख ली और दोनोने गहरा विचार करके अछूतपनका मैल पूरी तरह निकाल दिया। दोनों अपनेमे आयी हुअी कमजोरीको देख सके। वे मद्रासमे ही अछूतोसे आजादीके साथ मिलने लगे, अुनसे दूसरे सम्बन्ध भी जोड़े। काम पूरा होनेपर वे और मणिलाल आश्रम लौट आये।

- अिस तरह आश्रमवासियोंमें पैदा हुअी खलबली शान्त हुअी। बाहर भी कम खलबली न थी। जिन्होंने आश्रमको मदद देनेकी प्रतिज्ञा ली थी, अुनमेंसे मुख्य सहायकने तुरन्त मदद बन्द कर दी। कुअेंका पानी न मिलने तकका खतरा आ पहुँचा। मगर अुसे बेखटके पार कर लिया। और रुपये पैसेकी मददके बारेमें 'नरसी मेहताकी हुंडी' सिकारने जैसी घटनाअें हुअीं। न सोची हुअी जगहसे अचानक तेरह हजारके नोट आ पड़े। अिस तरह यह माना जा सकता है कि आश्रमवासियोंने दूदाभाअीको सब संकट सहकर भी निभा लेनेकी जो प्रतिज्ञा की थी, वह भारी सकट अुठाये बिना ही पूरी हुअी। अिस तरह अछूतपन मिटानेके विषयमें आश्रम पास हुआ। अछूत परिवार आजादीसे आतेजाते

हैं, और आश्रममें रहते हैं। दूदाभाअीकी लक्ष्मी तो अैसी हो गयी, अैसे परिवारकी ही हो।

अछूतोंके तीन धन्धे आश्रममें चलते हैं और अुनमें सुधार हो रहे हैं। आश्रममें रहनेवाले सभीको भंगीका काम तो करना ही पड़ता है। दरअसल अुसे धन्धा नहीं माना जाता, बल्कि हर अेकका फर्ज समझा जाता है। अिसलिअे पाखानोंकी सफाअी हाथोंसे ही होती है। पर डॉ० पुरेके बताये हुअे तरीकेपर होती है। मैला आश्रमकी जमीनमें छिछला गाड़ा जाता है। जिससे थोड़े ही दिनमें अुसकी खाद बन जाती है। डॉ० पुरेका कहना है कि बारह अिंच तककी जमीन ज़िन्दा होती है। अुसमें बेशुमार जीव रहते हैं। अुनका काम मैली जमीनको साफ करना है। वहाँ तक हवा और सूर्यकी किरणें पहुँचती हैं। अिसलिअे वहाँ तक मैला गाड़नेसे वह मिट्टीमें जल्दी मिल जाता है।

पाखाने भी अिस ढंगसे बनाये गये हैं कि अुनमें बदबू न आये और सफाअी करनेमें जरा भी मुश्किल न हो। अुपयोग करनेके बाद हर अेक आदमी अुसमें काफी सूखी मिट्टी डालता है — अितनी कि जब देखो तब अूपर सूखा ही नज़र आये।

दूसरा धन्धा बुनाअीका है। मोटी खादी गुजरातमें तो अछूत जुलाहे ही बुनते थे। अुनका धन्धा लगभग नष्ट हो गया था और बहुतेरे भंगीका काम करने लग गये थे। अब कुछ धन्धेका जीर्णोद्धार हुआ है।

तीसरा चमारका काम है। यह भी आश्रममें जारी हो गया है। अिसके बारेमें ज्यादा 'गोसेवा'के प्रकरणमें आयेगा।

आश्रममें अुपजातियाँ नहीं मानी जातीं। अेक दूसरेके साथ खानेमें छुआछूत नहीं रखी जाती, अिसलिअे आश्रममें सभी

अेक पंगतमें खाने बैठते हैं"। अिस व्यवहारका प्रचार आश्रमके बाहर नहीं किया जाता। अछूतपन मिटानेके लिअे अिस प्रचारकी जरूरत नहीं मानी गयी। अछूतपन मिटानेका अर्थ यह है कि अछूतोंके सार्वजनिक संस्थाओंमें जानेपर जो रुकावटें लगाअी जाती हैं, अुन्हें दूर किया जाय, और अुन्हें छूनेपर जो छुआछूत मानी जाती है, अुसे मिटाया जाय। ये पाबन्दियाँ कानूनसे भी हटाअी जा सकती हैं। रोटीबेटीका व्यवहार अलग सुधार है। अिसमें कानून या समाज दखल नहीं दे सकते। अिस खयालसे आश्रमवासी अपने लिअे सबके साथ खाद्य पदार्थ खानेकी स्वतन्त्रता रखते हैं, मगर अैसा करनेका प्रचार नहीं करते।

आश्रमकी तरफसे अछूतोंके लिअे पाठशालाअें खोलने और कुअें खुदवानेकी कोशिश भी हो रही है। अिसमें आश्रमका खास काम रुपया जमा करना है। अछूतपनके बारेमें आश्रमकी सही प्रवृत्ति तो आश्रमवासीके अपने आचरणको सुधारनेकी है। आश्रममें अूँचनीचपनको कोअी भी स्थान नहीं है।

अितनेपर भी आश्रम वर्णाश्रमको हिन्दू धर्मका अंग मानता है। मगर वर्णाश्रमका सच्चा अर्थ मामूली अर्थसे अलग तरहका है। चार वर्ण और चार आश्रम सिर्फ हिन्दूधर्मकी ही व्यवस्था हो सो बात नहीं। यह चीज मनुष्यमात्रमें है। यह सार्वजनिक नियम है। अुसका भंग करनेसे दुनियामें कअी आपत्तियाँ पैदा हुअी हैं। जैसे वर्ण चार हैं, वैसे ही आश्रम भी चार हैं— ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। ब्रह्मचर्य आश्रमका अर्थ है विद्याभ्यास काल। अिस समयमें विद्यार्थी — स्त्री या पुरुष ब्रह्मचर्यका पालन करे, अितना ही काफी नहीं, बल्कि अिस कालमें अुसपर विद्यासंपादनके सिवा दूसरा कोअी भार न होना चाहिये। यह अवस्था

कमसे कम २५ साल तककी मानी गयी है। अिसके बाद ब्रह्मचारीको गृहस्थ जीवनमें प्रवेश करना हो, तो करे। ९९.७५ फी सैकड़ा तो प्रवेश करेंगे ही। मगर यह जीवन ५० वर्षकी अुम्रमें बन्द होना ही चाहिये। अिस कालमें गृहस्थ अपनी विषयतृप्ति करे, धन कमाये, धन्धा करे, सन्तान पैदा करे। बाक़ीके २५ साल पतिपत्नी अलग रहकर सिर्फ़ भलाअीके काम करें, जनताकी सेवा करें, परिवारसे दूर रहकर सारे संसारको परिवार माननेकी कोशिश करें। आख़िरी २५ बरस दोनों संन्यासमें बितायें। अिसमें ख़ास व्यवसायके बजाय दोनों अलग अलग रहकर लोगोंमें धार्मिक जीवनका प्रचार करें, आदर्श जीवन बिताकर लोगोंको आदर्श सिखावें, और खुद सिर्फ़ प्रजाकी दयापर गुजर करें। यह साफ़ मालूम होता है कि अिस तरहसे बहुत लोग चलें, तो समाजकी ज़िन्दगी बहुत अूँचे दर्जेकी हो जाय।

मगर अिस बारेमें अलग अलग राय हो सकती है कि आश्रमकी जो मर्यादा अूपर बताअी गयी है, वही आज भी होनी चाहिये या दूसरी। मुझे मालूम नहीं कि आश्रमव्यवस्था की खोज हिन्दू धर्मके बाहर भी हुअी है। आज तो यह कहा जा सकता है कि हिन्दू धर्ममें वह लगभग नष्ट हो गयी है। ब्रह्मचर्य आश्रम-जैसी चीज तो कोअी है ही नहीं। और यह तो आश्रमजीवनका आधार है। दूसरे आश्रमोंमें संन्यास आश्रम नामके लिअे ज़रूर पाया जाता है। परन्तु संन्यासियोंमें बहुतसे तो सिर्फ़ वेषधारी रह गये हैं, बहुतसे ज्ञानहीन हैं, और कुछ, जिन्होंने विद्या अच्छी प्राप्त की है, वे ब्रह्मज्ञानी तो नहीं, लेकिन धर्मान्ध हैं। अिनमें कहीं कहीं कोअी चरित्रवान संन्यासी भी ज़रूर देखनेमें आते हैं। मगर संन्यासीके तेजवाले मुश्किलसे नज़र आते हैं। सम्भव है कैसे

लोग छिपे हुअे रहते हों । मगर यह साफ साबित है कि सन्यास आश्रमका भी लोप हो रहा है । जिस समाजमे प्रौढ सन्यासी विचरते हों, अुस समाजमें धर्मकी, अर्थकी कंगाली नही होती, वह पराधीन नही होता । आजका हिन्दू समाज धर्महीन, तेजहीन, अर्थहीन और पराधीन है, अिस बारेमे दूसरी राय मेने नही सुनी । मेरी राय तो यहाँ तक है कि सन्यास आश्रम जिन्दा होता, तो दूसरे पासवाले धर्मोपर भी अिन सन्यासियोका असर पडे विना न रहता । सन्यासी हिन्दू धर्मका ही नही, सभी धर्मोका है ।

मगर अैसे सन्यासी ब्रह्मचर्य आश्रमके बिना पैदा ही नही हो सकते, वानप्रस्थ तो नामको भी नही । बाकी रहा गृहस्थ आश्रम । सो गृहस्थजीवन आश्रमके रूपमे नही रहा । वह सिर्फ मनमानी करनेका साधन बना हुआ है । अुसमें मर्यादा नही रही । दूसरे आश्रमकी ढालके विना गृहस्थजीवन पशुजीवन है । अिस जीवनकी मर्यादा मनुष्य और पशुके बीचका अेक बडा फर्क है । वह न रहा तो मेरी रायमें यह कहनेमे अतिशयोक्ति नही होगी कि गृहस्थजीवनमे पशुजीवनके सिवा और कुछ नही रहेगा ।

अिस आश्रमजीवनका फिरसे अुद्धार करनेकी बडी भारी कोशिश आश्रममे जारी है । मुझे खुद यह प्रयत्न अैसा ही हास्यजनक लगता है, जैसे चीटा गुडसे भरे घडेको अुठानेकी कोशिश करे । मगर कितना ही हास्यजनक लगे तो भी यह अेक सत्यनिष्ठासे प्रेरित प्रयत्न है । और अिसीलिअे आश्रममें सभीको ब्रह्मचर्यका पालन करना पडता है, आश्रमवासियोंको अुसे मरते दम तक पालना है । अिस दृष्टिसे आश्रममे रहनेवाले सभीको आश्रमवासी नही माना जाता । जिसने अुम्रभर ब्रह्मचर्यका पालन करनेका व्रत लिया

है, वही आश्रमवासी माना जाता है। असे थोड़े ही हैं। बाकी सब आश्रम-विद्यार्थी माने जायँगे। अगर यह प्रयत्न सफल हो, तो शायद अुसमेंसे आश्रमव्यवस्था पैदा हो जाय। मेरा खयाल है कि अिस प्रयत्नकी सफलताका अन्दाज़ लगानेके लिअे आश्रमकी सोलह सालकी ज़िन्दगी काफ़ी नहीं है। मैं नहीं जानता यह अन्दाज़ा कब लगाया जा सकेगा। अितना ही कह सकता हूँ कि सोलह बरसकी कोशिशके बाद मुझे निराशा ज़रा भी नहीं है।

जब आश्रमव्यवस्था अिस तरह बिगड़ गयी है, तब वर्ण-व्यवस्थाकी हालत अिससे कुछ कम खराब नहीं है। मूलमें चार वर्ण थे। अब अनगिनत हैं अथवा अेक ही। यदि जातियोंके बराबर वर्ण मानें, तो जातियाँ अपार हैं। और यदि यह मानें कि जातियोंमें वर्णकी कोअी मर्यादा ही नहीं है (मेरी रायमें यही मानना भी चाहिये), तो अेक ही वर्ण रहा है, और वह है शूद्र। यहाँ शूद्रका अर्थ तिरस्कार नहीं है, लेकिन वस्तुस्थितिसूचक है। जो [illegible] है, वह पराधीन है यानी शूद्र है। अभी तो सारा हिन्दुस्तान पराधीन है, अिसलिअे वह शूद्र है। किसान अपनी ज़मीनका मालिक नहीं, व्यापारी अपने व्यापारका मालिक नहीं। शास्त्रोंमें ब्राह्मण और क्षत्रियोंके जो गुण बतलाये गये हैं, वैसे गुणवाले ब्राह्मण और क्षत्रिय भाग्यसे ही देखनेको मिलते हैं।

जब वर्णव्यवस्थाकी खोज हुअी थी, तब मेरे खयालसे अूँच-नीचकी भावना नहीं थी। अिस संसारमें न कोअी अूँचा है, न नीचा। अिसलिअे जो अपनेको अूँचा मानता है, वह कभी अूँचा नहीं हो सकता। जो अपनेको नीचा मानता है, वह सिर्फ़ अज्ञानके कारण। अुसे अुसके नीच होनेका पाठ अुसमें अूँचापन भोगनेवालोंने सिखाया है। ब्राह्मणमें ज्ञान हो, तो ज्ञानहीन अुसका आदर

करेंगे ही। जो ब्राह्मण आदरसे अभिमानी बनेगा या अपनेको अूँचा मानेगा, वह अुसी वक्तसे ब्राह्मण नहीं रहेगा। गुणकी पूजा सदा ही होगी। मगर गुणवान आदमीने अपनेको जहाँ अिससे अूँचा माना कि तुरन्त अुसके गुण निकम्मे हो जाते हैं। जिसमे कुछ भी गुण है या शक्ति है, वह अुसका रक्षक है और अुसे अुसका अुपयोग समाजके लिअे करना चाहिये। किसी भी व्यक्तिको अपने लिअे जीनेका हक नहीं। कोअी अपनी शक्ति अपने ही लिअे अिस्तेमाल नहीं कर सकता। सब अपनी शक्तिका अुपयोग समाजके लिअे पूरी तरह कर सकते हैं।

अिस कल्पनासे पहले वर्णव्यवस्था हुअी हो या न हुअी हो, आज तो कोअी भी अपनेको अूँचा कहलाकर जीवननिर्वाह नहीं कर सकता। अुसका यह दावा समाज अपनी अिच्छासे नहीं मानेगा। यह हो सकता है कि वह जबरदस्तीसे सिर झुका ले। दुनियामें जो जाग्रति हुअी है, अुसमें स्वेच्छाचार भले ही बहुत आ गया हो, मगर लोकमत अूँचनीचका भेद सहनेको आज तैयार नहीं। दिनदिन अिस भेदका अिन्कार बढता जा रहा है। यह ज्ञान फैलता जाता है कि आत्माके रूपमें सभी बराबर हैं। यह भाव भी अूँचनीचका भाव मिटाता है कि हम सब अेक ही अीश्वरके बनाये हुअे हैं। अिसका यह मतलब नहीं कि चूँकि यह भेद नहीं है या न होना चाहिये, अिसलिअे सबकी शक्ति भी आज बराबर है या होनी चाहिये। अेक दूसरेकी शक्ति अेकसी नही, सबकी जायदाद बराबर नहीं, सबको समान अवसर नहीं। फिर भी सब बराबर हैं, अिसीका नाम तो भ्रातृभाव है। भाअी-बहन अलग प्रकृतिके, अलग शक्तिवाले, अलग अुम्रके होते हुअे भी सब समान हैं। यही बात जीवमात्रके बारेमें है।

अिस तरह अगर वर्णव्यवस्था परमार्थके लिअे हो, धार्मिक हो तो अुसमें अूँचनीचपनकी गुंजाअिश ही नहीं होती।

अिस तरहके अेक दूसरेसे समान समझनेवाले चार विभाग वर्णव्यवस्थामें हैं, और वे जन्मसे हैं। कर्मसे वे बदल भले ही जायँ, पर वर्णव्यवस्थाका आधार जन्म न हो, तो अैसा ही लगता है कि फिर अुसका कोअी अर्थ नहीं रह जाता है।

वर्णव्यवस्थामें धर्म और अर्थका संग्रह है। अुसमें पिछले जन्मका और माँबापका असर मान लिया गया है। सभी अेकसी शक्ति और अेकसा रवैया लेकर नहीं पैदा होते। यह भी नहीं हो सकता कि बेशुमार बच्चोंकी शक्तिका माँबाप या हुकूमत अन्दाजा लगा सकें। लेकिन अगर यह खयाल रखकर बच्चेको अपने धन्धेके लिअे तैयार किया जाय कि बच्चेमें अुसके माँबापका, आसपासके वायुमण्डलका, और पिछले संस्कारोंका असर होगा ही, तो किसी किस्मकी परेशानी न हो। निरर्थक प्रयोगोंमें लगनेवाला वक्त बच जाय। नीतिनाशक होड़ न हो, समाजमें सन्तोष रहे और आजीविकाके लिअे कशमकश न हो।

अिस व्यवस्थाके गर्भमें ही अूँचनीचपनका भेद अुठ जाता है। अगर मोचीसे दरजी बड़ा और बढ़अीसे वकील डॉक्टर और भी बड़े माने जायँ, तो अपनी मरजीसे कोअी मोची या बढ़अी न रहे, बल्कि सब वकील डॉक्टर बननेकी कोशिश करें। और अैसा करनेका अुन्हें अधिकार होना चाहिये और तारीफकी बात समझी जानी चाहिये। यानी वर्णव्यवस्थाको बुराअी मानकर अुसके नाशकी अिच्छा और कोशिश करनी ठीक है।

• यह कहनेमें कि सब अपने अपने पैतृक धन्धेकी शिक्षा ग्रहण करें यह सवाल भी आ जाता है या होना चाहिये कि

सब धन्धोका मूल्य गुजरके लायक ही होना चाहिये। अगर मोचीसे वढअीकी मजदूरी ज्यादा हो और दोनोंसे वकील डाक्टरकी बहुत ही अधिक हो, तो फिर सभी वकील डाक्टर बननेकी कोशिश करेंगे। आज अैसा होता है। अुससे द्वेष बढा है और वकील डाक्टरोंकी तादाद जितनी चाहिये अुससे ज्यादा हो गयी है। जैसे वढअी और मोची वगैराकी जरूरत है वैसे समाजको वकील, डाक्टरकी जरूरत भी हो सकती है। यहाँ ये चार धन्धे अुदाहरणके लिअे और अेकदूसरेके साथ मुकाबला करनेके लिअे दिये गये हैं। यहाँ यह विचार करनेकी जगह नहीं है कि कौनसे धन्धोंकी समाजको ज्यादा जरूरत है या बिलकुल जरूरत नही है।

लेकिन वर्णव्यवस्थाको माननेके साथ ही यह भी मान लेना चाहिये कि विद्वत्ता कोअी धन्धा नही है और रुपया जमा करनेके लिअे अुसका अुपयोग नही होना चाहिये। अिसलिअे वकील डाक्टरके कामको जिस हद तक पेशा माना जाय, अुस हद तक अुससे गुजारे लायक ही लेना चाहिये। पहले अैसा ही था। देहाती वैद्य वढअीसे ज्यादा नही कमाते थे। अुन्हे भी रोजी मिलती थी। मतलब यह कि सब धन्धोंकी कीमत बराबर और गुजर लायक होनी चाहिये। वर्णकी विशेषता अुसकी सख्याका निश्चय करनेमे नही है, अुसकी विशेषता मनुष्यके कर्तव्यका निश्चय करनेमे है। वर्णकी सख्या भले अेक हो या अनेक, शास्त्रकारने तो चार वर्ण जरूरी मानकर बताये है। सबको बराबरीका दर्जा देनेके बाद अुन्हें चार माने या अुनकी सख्या बिलकुल अुडादें, तो भी बहुत फर्क नहीं पडता।

जहाँ खाना होगा, जहाँ अुसे पसन्द होगा, जहाँ अुसे प्रेमसे निमंत्रण मिलेगा, वहाँ वह खायेगा। स्त्रीपुरुषको जहाँ अपना श्रेय दिखेगा, वहाँ वे शादी करेंगे। आम तौरपर विवाह अेक ही वर्णमें होना सम्भव है। मगर दूसरे वर्णमे हो, तो पाप नही माना जा सकता। पापका निर्णय दूसरी ही तरह होगा। मनुष्यका बहिष्कार वर्णसे नही होगा, समाजसे होगा। समाजका विधान आजसे ज्यादा अच्छा होगा। अुसमे जो गन्दगी, पाखण्ड वगैरा घर कर चुके हैं, वे निकल जायँगे।

खेती

कहना चाहिये कि आश्रममें जो खेती होती है, अुसका कारण मगनलाल है। खेतीके बिना आश्रम दूल्हे बिना बरात जैसा माना जायगा, फिर भी खेतीमे पडनेकी मेरी हिम्मत बिलकुल न थी। मेरा खयाल था कि अुसके लिअे आश्रम न तो कुशल है, न वैसी परिस्थिति है। खेती बहुत बडा साहस है और अुसके लिअे खूब जमीन, रुपया और आदमी चाहियें। अुसपर ध्यान दिया जाता तो दूसरे जो काम ज़रूरी माने गये थे, जिनको करनेकी हिम्मत थी और जो रुकने-जैसे नहीं थे, अुन्हें धक्का पहुँचनेका भी मुझे डर था। मगर मगनलालके आग्रहके सामने मै लाचार हो गया। अुन्होंने कहा — "कुछ नहीं तो मेरे मन बहलावके लिअे ही खेती होने दीजिये।" मगनलाल मेरे साथ शायद ही कभी दलील करते थे। मै जो कहता अुस पर अमल करनेका धर्म अुन्होंने पूरी तरह सीख लिया था। जहाँ अुन्हें सूझ न पडता या अुनका मतभेद होता, वहाँ वे मुझे कह देते थे। अितनेपर भी यह मान कर कि मेरे विचारपर चलना ही ठीक होगा, वे अुसमें जुट जाते थे। सच पूछा जाय तो अुनका यह खयाल था कि खेतीके

बिना आश्रम हो ही नहीं सकता। मगर अुसके लिअे अुन्हें वहस करनी पड़ती। वह न करके अुन्होंने प्रेमकी सबसे बड़ी दलील पेश कर दी और खेती शुरू हुअी। आश्रममें जो पेड़ हैं, वे ज्यादातर मगनलालके लगाये हुअे या अुनके लगवाये हुअे हैं। खेतीके बारेमें मेरी शंकायें आज भी बनी हुअी हैं। आज भी मैं यह दावा नहीं करूँगा कि आश्रम खेती करता है। परन्तु जो खेती आश्रममें है, अुसके लिअे मुझे दुःख नहीं। अुसमें रुपया काफी खर्च हुआ है। हिसाबसे यह नहीं बताया जा सकता कि वह अब भी स्वावलम्बी हो गयी है। अितनेपर भी मैं देखता हूँ कि जितनी खेती होती है, अुतनी खेतीकी आश्रमकी हस्तीके लिअे जरूरत थी ही। खेतीके बिना आश्रम बन ही नहीं सकता। आश्रमको अपनी सागभाजी तो पैदा करनी ही चाहिये। मगनलालने अपने लिअे तो पिछले वर्षोंमें व्रत ही ले लिया था कि आश्रममें जो सागतरकारी मिलेगी, अुसीपर गुजर करूँगा। आश्रममें अपने लायक अनाज और घास भी पैदा करनेकी शक्ति होनी चाहिये। खेतीके सुधारका लोभ भले न रहे, मगर मैं देख सकता हूँ कि खेतीके बिना आश्रम वैसा ही लगेगा, जैसा नाकके बिना शरीर।

यह खेती अभी तो प्रयोगके रूपमें ही है। यह दावा नहीं किया जा सकता कि अुससे किसीको बहुत शिक्षा दी जा सकती है। मगर अुसका अुपयोग खेतीकी साधारण जानकारी हासिल करनेके लिअे काफी होता है। आश्रमकी जमीनपर जहाँ अेक भी पेड़ नहीं था, वहाँ अब बहुत पेड़ हो गये हैं। और हर पेड़ अुपयोगकी दृष्टिसे लगाया गया है। सागभाजी होती है, थोड़े फल होते हैं, घासचारा होता है। जैसा मैं पहले बता चुका हूँ, मनुष्यके मैलेको खादके काममें लिया जाता है, और यह कहा जा सकता है कि अिसका नतीजा बहुत अच्छा हुआ है।

खेती करनेमें पुराने और नये हलोंका प्रयोग किया गया है। पानी खींचनेके लिअे वे ही योजनाअें काममें ली गयी, जो गाँवोमें पनप सकती हैं। यह कहा जा सकता है कि खासकर पुराने औजारोंकी तरफ झुकाव रहा है। गरीब किसानके लिअे ये औजार आदर्श मालूम हुअे है। यह दूसरी बात है कि अुन्हींमें थोड़ा फेरबदल किया जा सकता है। मगर अिस बारेमें निश्चयपूर्वक कहने लायक परिणाम अभी तक नहीं लाया जा सका। क्योंकि अुसे मुख्य काम समझकर अुसके लिअे जितना चाहिये अुतना समय और बुद्धिका अुपयोग नही किया गया। आश्रम अिस काममें नेतृत्व नहीं कर सकता।

गोसेवा

आश्रमका आदर्श तो दूधके बिना गुजर करना है। जैसे आश्रमका खयाल है कि मास मनुष्यकी खुराक नही, वैसे ही पशुओके दूधकी बात है। अेक साल तक बहुत आग्रहके साथ आश्रममे दूध घी छोड़ा गया, मगर बादमें यह प्रयोग बन्द करना पड़ा। आश्रममें परवरिश पानेवाले बच्चोंके शरीर कमजोर होने लगे। वे बड़े किन्तु दुर्बल होने लगे। अिसलिअे धीरेधीरे घी और बादमें दूध शुरू हो गया। अिनके शुरू होते ही यह निश्चय स्वाभाविक था कि पशुओके रखे बिना काम नही चलेगा।

आश्रम 'गोरक्षा' धर्मको मानता है। 'गोरक्षा' शब्दमे अभिमान और आडम्बर है। अिन्सान जानवरका रक्षक नही बन सकता। जो खुद रक्षा चाहता है, वह दूसरेकी रक्षा नहीं कर सकता। जीव मात्रका रक्षक अेक परमेश्वर ही है। अैसा खयाल होनेके कारण आश्रमने 'गोरक्षा'के बजाय 'गोसेवा' शब्दका प्रयोग

पसन्द किया। लेकिन चूँकि शुद्ध दूध घी छोड़कर गोसेवा सिर्फ परमार्थकी दृष्टिसे करनेकी आश्रमकी अिच्छा सफल न हुअी, अिसलिअे ढोर पाले गये। शुरू शुरूमें यह स्पष्ट नहीं था कि सिर्फ गाय बैल ही रखना धर्म है। अिसलिअे गाय, बैल और भैंसें रखी गयीं।

पर दिन दिन यह साफ होता गया कि आजकल तो गोसेवा करनेसे ही मनुष्यके सिवा दूसरे सब प्राणियोंकी सेवा हो जाती है। गोसेवा अिन्सानके लिअे रास्ता बतानेवाली है। अिससे आगे जानेके अुसके पास साधन नहीं। अिनके सिवा गोवध ही हिन्दू-मुसलमानोंमें झगड़ेका अेक कारण बन जाता है। आश्रमका खयाल है कि मुसलमानसे गाय जबरन् छीन लेनेका हिन्दूको अधिकार नहीं, यह अुसका धर्म नहीं। दूसरेपर जबरदस्ती करके अुससे गाय छुड़ानेमें गोसेवा या गोरक्षा नहीं, बल्कि अिससे अुनकी हत्या जल्दी होना सम्भव है। खुद गायके प्रति अपना धर्म पालन करके, गायको महँगी बनाकर ही हिन्दू गायकी और अुसकी सन्तानकी सेवा या रक्षा कर सकता है। यह काम आजकल हिन्दू समाजने छोड़ दिया है। गायकी कदर कम ही होती है। गायसे भैंस ज्यादा दूध देती है, अुसमें घी ज्यादा होता है, अुसे रखनेमें खर्च थोड़ा होता है। फिर भैंसकी औलाद अगर पाजा हो, तो बहुतोंको यह चिन्ता नहीं रहती या बहुत कम चिन्ता रहती है कि अुसका क्या हाल है, क्योंकि भैंसकी रक्षा या सेवा करना अुनका धर्म ही नहीं। अिस तरहका ओछा हिसाब लगाकर हिन्दू समाजने नासमझीसे, अज्ञानसे और स्वार्थसे गायकी अुपेक्षा की है और भैंसको जगह दी है, और ऐसा करके दोनोंका बुरा किया है। भैंसके पालनेमें भैंसका स्वार्थ भी नहीं सधता। भैंसका भला

अुसके स्वतन्त्र रहनेमें है । भैंस पालनेका अर्थ है पाड़ेको दु:ख दे देकर मारना । यह बात सब प्रान्तोंपर लागू नहीं होती, लेकिन गुजरातमें पाड़ेका अुपयोग खेतीमें नहीं होता, अिसलिअे अुसके नसीबमें बुरी मौत मरना ही होता है ।

अिस विचारसे आश्रममेंसे भैंसको निकाल दिया गया और सिर्फ गाय बैल पालनेका ही आग्रह रखा गया है । गायकी नसल सुधारना, अलग अलग खुराक देकर दूध बढाने और सुधारनेकी खोज करना, दूधकी रक्षा करनेकी कला सीखना, अुसमेंसे आसानीसे मक्खन निकालना, बैलोंको कमसे कम कष्ट देकर खस्सी करना — वगैरा बातोंपर ध्यान दिया जाता है । अभी सब कुछ प्रयोगके तौरपर होता है । मगर आश्रमका खयाल अैसा है कि गायका पूरा और दयामय अुपयोग हो, तो गाय महँगी पड ही नहीं सकती ।

आज शायद बहुतोंको पता न हो कि गाय महँगी पडती है । वह महँगी पड़ती है, अिसलिअे अुसकी हत्या होगी ही । अिन्सान अितना परोपकारी नहीं होता कि खुद मरकर गायको बचाये, यानी गायको अपने आपको खा जाने दे । आजके हिसाबसे पशुओंकी सख्या अितनी है कि अुन्हें अच्छी तरह पालें, तो मनुष्यको अपने लिअे काफी खुराक न मिले । यह बात सही नहीं है, यह साबित करनेके लिअे यह बताना चाहिये कि गाय बैलको ज्यादा अच्छी तरह पालनेसे अुनकी अुत्पादक शक्ति बढ सकती है । आश्रमकी राय है कि यह बताया जा सकता है ।

लेकिन यह बात साबित करनेके लिअे हिन्दू समाजमें धर्मके नामसे जो वहम घुस गये हैं, अुन्हें मिटाना चाहिये । हिन्दू समाज गायकी हड्डियों, अँतड़ियों वगैराको काममें नहीं लेता । गायका

मरनेके बाद क्या होता है, अिसकी परवाह नहीं की जाती। चमारके पेशेको पवित्र माननेके बजाय गन्दा माना जाता है। दूसरे जानवरोंकी हड्डियाँ काममें ली जायँगी, मगर गायकी नहीं। और ली भी जायँगी तो वे हिन्दू समाजकी तैयार की हुअी नहीं होंगी। गाय अस्थिपिंजर होकर आस्ट्रेलिया जाकर कत्ल हो, वहाँसे अुसकी हड्डीकी खाद बनकर यहाँ आये, उसके जूते वगैरा बन कर आयें, तो अुन सबका अुपयोग किया जायगा। अुनके मांसका अर्क दवाके तौरपर आयेगा, तो अुसे भी खाया जायगा।

अैसा करनेमें गायकी बर्बादी है, रुपयेकी बर्बादी है और धर्मके नामपर लूट होती है। अिसलिअे आश्रममें बड़ी कोशिशसे चमारका धन्धा शुरू किया गया है। अुसमें अभी तक कोअी होशियार नहीं हो सके है। बाहरसे कोअी अैसा चमार नहीं मिला, जो शिक्षा पाया हुआ हो और आश्रमके नियमोंका पालन कर सके। अेक था, जिसे हम रख न सके। मामूली चमारोंको बनानेकी कोशिश भी पार नहीं पड़ी। फिर भी चमारका काम आश्रमका अंग बना हुआ है। और चरखेकी तरह अिस कलापर भी काबू पाकर अुसका प्रचार करनेकी आशा आश्रम रखता है। क्योंकि मरी हुअी गायके सारे अंगोंका अुपयोग किया जायगा, तभी गायका भाररूप होना बन्द होगा। अुससे नफा तो कभी होगा ही नहीं। धर्म अर्थका विरोधी कभी नहीं है, नफेका विरोधी हमेशा है। लेकिन गायसे खर्च निकल जाना हो, तो आज जिस ढंगसे अुसकी लाशका दुरुपयोग होता है या जिस तरह वह बेपारियोंका बेपार बढ़ानेके काम आती है, वह बन्द होना चाहिये। लेकिन हिन्दू समाज गायको अपने पास रखे, जीतेजी अुसे और अुसकी सन्तानको अच्छी तरह पाले, बुढ़ापेमें अुसे रखे और मरनेपर अुसकी लाशका पूरा अुपयोग करे,

तो ही गाय बचे और अुसकी रक्षासे जीवमात्रकी रक्षा करना शायद हम सीखें। आज तो हमारे अज्ञान, आलस्य और द्वेषके कारण गायकी बर्बादी दिन दिन बढती जा रही है। फिर दूसरे मवेशियोंकी तो बात ही क्या?

आश्रमका खयाल यह है कि जितनी गोशालाअें और पिंजरापोल हैं, अुनका धार्मिक और शास्त्रीय अुपयोग हो, धनवान लोग अपने यहाँ गोशाला रखें और गायके दूध घीका ही आग्रह रखें, और धनी लोग गायके दूधका बेपार निषिद्ध मानकर सार्वजनिक गोशालाअें अिस तरह चलायें कि अुनका आमदखर्च बराबर रहे, तो जल्दी ही गायकी रक्षा हो सकती है।

आश्रमका अभी तो अुद्देश्य छोटा ही है यानी आश्रममें आदर्श गोशाला चलाना, गाय बैलका विकास करना, मरनेपर अुनके हर अंगका अुपयोग करके यह साबित करना कि अुनका खर्च सिरपर नहीं पडता, गोशाला चलाते हुअे गोसेवक तैयार करना और तैयार होनेपर अुन्हे ठिकाने लगाना। यह काम हो रहा है। रुकावटें बहुत आती हैं, मगर सफलता मिलनेका पूरा भरोसा है।

शिक्षा

यहाँ शिक्षा शब्द विशेष और साधारण दोनो अर्थोंमे अिस्तेमाल किया गया है। अिस शिक्षाके प्रयोगमें आश्रमकी जितनी परीक्षा हुअी है, अुतनी और किसी प्रयोगमे नही हुअी।

आश्रम कायम होते ही देख लिया कि आश्रममे रहनेवाले स्त्री-बच्चोंको पढाना लिखाना धर्म है। और आगे चलकर तो यह भी देखा कि जो अपढ पुरुष भी आश्रममे आते है, अुनके लिअे

भी बन्दोबस्त होना चाहिये। जो लोग आश्रममें थे, अुनसे शिक्षाका काम पूरा न हो सकेगा, यह भी साफ मालूम हो गया। शिक्षा दे सकनेवाले लोगोंसे खींच लेनेकी जरा भी आशा रखनी हो, तो शिक्षक वर्गके लिअे ब्रह्मचर्यका नियम कड़ा नहीं रखा जा सकता। अिस ख्यालसे आश्रमके दो भाग हो गये अेक शिक्षक विभाग और दूसरा आश्रम विभाग। मकान भी अलग अलग बनाये गये।

मनुष्य जाति अपना स्वभाव अेकाअेक कैसे छोड़े? बहुत कोशिश करनेपर भी ये विभाग होते ही अूँचनीचकी भावनाका जहर फैलने लगा। 'आश्रम विभाग' वालोंमें घमण्ड पैदा हुआ। शिक्षक विभाग अिसे कैसे सहता? यह अभिमान आश्रमके अुद्देश्यके विरुद्ध था, अिसलिअे असत्य भी था। अगर पूर्ण ब्रह्मचर्य जरूरी था, तो विभाग भी स्वाभाविक था। मगर पूर्ण ब्रह्मचर्यकी छापवालोंमें बड़प्पन माननेके लिअे तो कोअी कारण ही नहीं था। यह भी तो हो सकता है कि पूर्ण ब्रह्मचर्य पालनेका दावा करनेवालोंका मनसे यानी विचारोंमें रोज पतन होता हो और ब्रह्मचर्यका दावा न करनेवाले मगर अुसे पसन्द करनेवाले रोज अपने प्रयत्नमें अूँचे अुठते हों। बुद्धि यह सब समझती थी, मगर अुसपर अमल करना सबके लिअे कठिन हो गया था।

गड़बड़का अेक कारण तो यह था ही। दूसरा और पैदा हो गया। शिक्षाके तरीकेपर मतभेद हो गया और अुससे आश्रमकी व्यवस्थामें मुश्किलें आने लगीं। बहुत बहसें हुअीं, बड़े झगड़े हुअे, जहर पैदा हुआ, दिल खट्टे हो गये। अितना होने पर भी अन्तमें सब शान्त हो गये, या हो सकता है अेक दूसरेको बर्दाश्त करने लगे। अिसमें मुझे आश्रमके मूल हेतुकी यानी सत्यकी

जीत मालूम हुअी । मतभेदवालोंके मनमें मैल नहीं था । कोअी गंदी तिकड़ममें नहीं पड़ते थे। जो मेद होते थे, अुनके लिअे दु ख होता था। जो सच है, अुसीपर चलनेकी अिच्छा थी। अपनी अपनी रायके आग्रहसे सामनेवालेकी दलीलें समझनेमे रुकावट होती थी, अिसलिअे अुद्वेग होता था। अिसमे अिस बातकी परीक्षा हुअी कि आश्रमवासियोंमे अेक दूसरेके लिअे कितनी अुदारता रहती है।

अिस बारेमें आश्रममें खूब चर्चा हुअी कि तालीम किस किस्मकी और कितने समय तक दी जाय। अब भी यह दावा नहीं किया जा सकता कि आखिरी फैसलेपर पहुँच गये हैं। अिस विषयमे मेरे अपने विचार अलग ही हैं। मै नहीं कह सकता कि अिस मामलेमें मै अपने सब साथियोंको अपने साथ ले जा सका हूँ। अिसलिअे कुछ भी निश्चयके साथ आश्रमका आदर्श बताना मुश्किल है। मेरा खयाल अिस तरहका-है.

१. लडकों और लडकियोंको अेक साथ शिक्षा देनी चाहिये। यह बचपन आठ साल तक माना जाय।

२ अुनका समय मुख्यत शारीरिक काममे लगना चाहिये और यह काम भी शिक्षककी देखरेखमे होना चाहिये। शारीरिक कामको शिक्षाका अग माना जाय।

३ हर लड़के और लड़कीकी रुचि पहचानकर अुसे काम सौंपना चाहिये।

४. हरअेक काम लेते वक्त अुसके कारणकी जानकारी करानी चाहिये।

५ लड़का या लड़की समझने लगे तभीसे अुसे साधारण ज्ञान देना चाहिये। अुसका यह ज्ञान पढाअी लिखाअीसे पहले शुरू होना चाहिये।

६. अक्षरज्ञानको सुन्दर लेखन कलाका अंग समझकर पहले बच्चेको भूमितिकी आकृतियाँ खींचना सिखाया जाय, और जब अुसकी अँगुलियाँ मुड़ने लगें, तब अुसे वर्णमाला लिखना सिखाया जाय, यानी अुसे शुरूसे ही शुद्ध अक्षर लिखना सिखाया जाय।

७ लिखनेसे पहले बच्चा पढना सीखे। यानी अक्षरोंको चित्र समझकर अुन्हें पहचानना सीखे और फिर चित्र खींचे।

८ अिस ढंगसे जो बच्चा सीखेगा और मुँहसे ज्ञान पायेगा, वह आठ वर्षके भीतर अपनी ताकतके अनुसार बहुत ज्ञान पा लेगा।

९ बालकोंको जबरदस्ती कुछ न सिखाया जाय।

१० वे जो पढ़ें अुसमें अुन्हें रस आना ही चाहिये।

११ बच्चोंको पढाअी खेल-जैसी लगनी चाहिये। खेल भी शिक्षाका जरूरी अंग है।

१२ बच्चोंकी सारी शिक्षा मातृभाषाके जरिये होनी चाहिये।

१३ बच्चोंको हिन्दी अुर्दूका ज्ञान राष्ट्रभाषाके तौरपर दिया जाय। अुसकी शुरूआत लिखाअी पढाअीसे पहले होनी चाहिये।

१४ धार्मिक शिक्षा जरूरी मानी जाय। वह पुस्तकसे नहीं, शिक्षकके बर्तावसे और अुसीके मुँहसे मिलनी चाहिये।

१५ नौसे सोलह वर्षका दूसरा काल है।

१६ दूसरे कालमें भी जहाँ तक सम्भव हो लड़के लड़कियोंकी शिक्षा साथसाथ हो तो अच्छा है।

१७. दूसरे कालमें हिन्दू बालकको संस्कृतका ज्ञान मिलना चाहिये और मुसलमानको अरबीका।

१८ अिस कालमें भी शारीरिक काम तो होगा ही। पढ़ाअी-लिखाअीका समय जरूरतके मुताबिक बढ़ाना चाहिये।

१९ अिस कालमें माँबापका धन्धा अगर निश्चित हुआ जान पड़े, तो बालकको वह सिखाया जाय, और अुसे अिस तरह तैयार किया जाय कि वह बापदादाके पेशेसे गुजर करना पसन्द करे। यह नियम लड़कीपर लागू नहीं होता।

२० सोलह वर्षतक लड़के लड़कियोंको दुनियाके अितिहास, भूगोलका, और वनस्पति शास्त्र, ज्योतिष, गणित, भूमिति और बीजगणितका साधारण ज्ञान हो जाना चाहिये।

२१ सोलह सालके लडके लडकीको सीनापिरोना और रसोअी बनाना आ जाना चाहिये।

२२. सोलहसे पच्चीस साल तक मै तीसरा काल मानता हूँ। अिस कालमें हरअेक युवक और युवतीको अुसकी अिच्छा और हालतके अनुसार शिक्षा मिले।

२३ नौ वरसके बादसे होनेवाली शिक्षा स्वावलम्बी होनी चाहिये। यानी विद्यार्थी पढते वक्त अैसे अुद्योगमें लगे, जिससे पाठशालाका खर्च निकले।

२४ स्कूलमें आमदनी तो शुरुसे ही होने लगे। मगर शुरूके सालोंमें खर्चके बराबर आमदनी न होगी।
१०-७-'३२

२५ शिक्षकोंके वेतन बडे नहीं हो सकते, लेकिन गुजर लायक जरूर हों। अुनमे सेवावृत्ति होनी चाहिये। प्रारम्भिक शिक्षाके लिअे हर किसी शिक्षकसे काम चलानेका रिवाज बुरा है। सभी शिक्षक चरित्रवान होने चाहियें।

२६ शिक्षाके लिअे बडे और खर्चीले मकानोंकी जरूरत नहीं।

२७ अंग्रेजीकी पढाअी भाषाके रूपमें ही हो सकती है और अुसे पाठ्यक्रममे जगह मिलनी चाहिये। जैसे हिन्दी राष्ट्रभाषा है,

जैसे ही अंग्रेजीका अुपयोग दूसरे राष्ट्रोंके साथ व्यवहार और व्यापारके लिअे है।

अिसमें साधारण शिक्षाके बारेमें ज्यादातर मेरे विचार आ जाते हैं। स्त्रियोंकी विशेष शिक्षा कैसी और कहाँसे शुरू हो, अिस बारेमें मैं खुद निश्चय नहीं कर सका हूँ। अितनी राय पक्की है कि जितनी सहूलियत पुरुषको मिलती है, अुतनी ही स्त्रीको मिलनी चाहिये, और खास सुविधाकी जरूरत हो, वहाँ खास सुविधा भी मिलनी चाहिये।

प्रौढ अुमर वाले निरक्षर स्त्रीपुरुषोंके लिअे रात्रिवर्गोंकी जरूरत है ही। लेकिन मेरा खयाल अैसा नहीं है कि अुन्हें अक्षरज्ञान होना ही चाहिये। अुनके लिअे व्याख्यानों वगैराके जरिये साधारण ज्ञान मिलनेकी सुविधा होनी चाहिये, और जिन्हें पढना लिखना सीखनेकी अिच्छा हो, अुनके लिअे पूरी सहूलियत होनी चाहिये।

अूपरके वाक्योंमें मेरा कहनेका मतलब यह नहीं कि अिस सारी दिशामें मेरे और साथियोंके बीच मतभेद है। लेकिन चूँकि कुछ बातोंमें सूक्ष्म मतभेद है, अिसलिअे मैंने अूपरके विचार अपने कहकर रखे हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि आश्रममें आज तक जितने प्रयोग हमने किये हैं, अुनपरसे हम दृढ निश्चयोंपर पहुँच सके हैं। अेक विषयपर हम सब अेकमत हैं और वह यह कि शिक्षामें अुद्योगको और खासकर कताअीको बड़ा स्थान मिलना चाहिये। शिक्षा ज्यादातर स्वावलम्बी होनी चाहिये और देहाती-जीवनको ताकत पहुँचानेवाली और अुस जीवनके साथ सम्बन्ध रखनेवाली होनी चाहिये।

मेरा खयाल यह है कि शिक्षाके प्रयोगोंमें आश्रमको ज्यादासे ज्यादा सफलता स्त्रियोंके बारेमें मिली है। वह अिस तरह कि

जो स्वतंत्रता और आत्मविश्वास आश्रमकी स्त्रियोंमें आया है, वह अितने ही अरसेमें और अुसी वर्गकी स्त्रियोंमें कही दूसरी जगह देखनेमें नहीं आया। अिसका कारण आश्रमका वातावरण है। आश्रममें स्त्रीपर अैसा कोअी अकुश नहीं रखा गया, जो पुरुषपर न रखा गया हो। स्त्रियोंके मनमें बराबरीका विचार शुरूसे ही ठूँस दिया जाता है। कामोंमे सबको बराबर भाग लेना पड़ता है। अैसा फर्क नहीं, रखा गया कि फलां काम स्त्री का ही है और पुरुष अुसे करे ही नहीं। रसोअीके काममे स्त्रीपुरुष दोनोंने भाग लिया है और लेते हैं। शरीरकी जो मेहनत स्त्री कर ही नहीं सकती, अुससे अुसे मुक्त रखा जाता है। अिसके सिवा अेक भी अैसा अुद्योग नहीं, जिसमें स्त्रीपुरुष साथ साथ काम न करते हों। पर्दा और घूँघट-जैसी चीज आश्रममें है ही नहीं। अिस तरह आश्रमका वातावरण अैसा बन गया है कि स्त्री कहींसे भी आयी हो, अुसे आश्रममे आते ही अलग तरहका और स्वतत्र वातावरण महसूस होता है और वह अपनेको निर्भय मानने लगती है। मेरा विश्वास है कि अिसमे ब्रह्मचर्य व्रतका बहुत बडा हाथ रहा है। बडी अुम्रकी लड़कियाँ कुँवारी हैं। आश्रममे रहनेवाले हम सब जानते हैं कि आश्रमका यह प्रयोग जोखमोंसे भरा हुआ है। लेकिन अिस तरहके जोखम अुठाये बिना स्त्रियोंकी अुन्नति और अुनकी जाग्रति असम्भव-सी दीखती है।

जिस तरह अछूतपन मिटानेकी जरूरत है, अुसी तरह स्त्रियोंके बारेमें कुछ वहम, खयाल और रिवाज भी दूर करनेकी आवश्यकता है। बालविवाह, हर लडकीके लिअे ब्याह करनेका माना जानेवाला धर्म, मासिक धर्म शुरू होनेसे पहले शादी करनेकी मानी जानेवाली जरूरत, विधवाका पुनर्विवाह न करने की समाजकी तरफकी

पाबन्दी वगैरा रिवाज जब तक बन्द न होंगे, तब तक स्त्री जाति आगे नहीं बढ़ सकती। अिस खयालसे आश्रम स्त्रियोंको आते ही यह सिखाने लगता है कि अूपरके रिवाज बुरे हैं, धर्म विरुद्ध हैं। वे अिस शिक्षापर अमल होते देखती हैं, अिसलिअे अुनके दिलको चोट नहीं पहुँचती और अुन्हें अैसा नहीं लगता कि ये सब बातें पुस्तकमें बने हुअे बैंगनकी-सी हैं, जो सिर्फ देखने भर की चीज हो, जिससे होने जानेवाला कुछ न हो।

जिसे हम आम तौरपर शिक्षा मानते हैं, वह आश्रममें थोड़ी ही देखी जाती है। अितनेपर भी मेरी राय यह है कि बच्चेसे बूढ़े तक स्त्रीपुरुषोंमें शिक्षाकी लगन पैदा हुअी है, ज्ञान प्राप्त करनेकी अिच्छा बढ़ती जा रही है और अिसके लिअे वक्त न मिलनेकी शिकायत भी रहती है। मुझे यह शुभ चिन्ह मालूम होता है। आश्रममें आनेवाले शिक्षामें रस लेनेवाले या शिक्षा पाये हुअे नहीं होते। बहुतोंको तो सिर्फ लिखनापढ़ना ही आता है। बाहर तो अिससे आगे बढ़नेका हौसला तक न था। आश्रममें थोड़ा समय बीतनेपर अक्षरज्ञान बढ़ानेकी अुमंग पैदा होती है। जो संस्था अितना कर सकती है, अुसका रास्ता आसान हो जाता है, क्योंकि पहली सीढ़ी अक्सर सीखनेकी अुत्कण्ठा पैदा करना ही है। आश्रममें आनेवालोंमें यह तुरन्त पैदा होती है। आश्रम अिस अुत्कण्ठाको पूरा करनेके लिअे जितनी चाहिये अुतनी सहूलियत दे नहीं सका, अिसका मुझे बहुत दुःख नहीं है। आश्रममें लगी हुअी पाबन्दियोंके कारण शायद यथेष्ट संख्यामें अैसे आदमी कभी नहीं आयेंगे, जो शिक्षाका काम कर सकें। अिसलिअे आश्रममें ही अिस कामके लिअे जो तैयार हो सकते हैं, अुनसे सन्तोष मानना पड़ता है। लेकिन यह बात भी नहीं कि आश्रमके कामोंके

कारण अैसे शिक्षक तैयार न हो सकें या तैयार होनेमें वहुत वक्त लगे। अैसा हो तो भी जिनमें ज्ञान प्राप्त करनेकी सच्ची लगन पैदा हो चुकी है, वे वादमें भी प्राप्त करेंगे। शिक्षाके लिअे समयकी मर्यादा ही नहीं। सच्ची शिक्षा तो स्कूल छोडनेके वाद शुरू होती है। जिसने अुसका महत्त्व समझा है, वह सदा ही विद्यार्थी है। अपना कर्तव्यपालन करते हुअे और अुसके पालनके लिअे मनुष्यके ज्ञानमें रोज वढती होनी ही चाहिये। जो सब काम समझकर करता है, अुसका ज्ञान रोज वढना ही चाहिये। और यह वात आश्रममें अच्छी तरह समझ ली गयी है।

शिक्षाकी प्रगतिमें अेक चीज रुकावट डालती है। यह वहम कि शिक्षकके विना शिक्षा ली ही नहीं जा सक्ती, समाजकी वुद्धिको रोक रहा है। मनुष्यका सच्चा शिक्षक वह खुद ही है। आजकल तो अपने आप शिक्षा प्राप्त करनेके साधन खूब हो गये हैं। वहुतसी वातोंका ज्ञान लगनसे हरअेकको मिल सकता है और जहाँ शिक्षककी ही जरूरत होती है, वहाँ वह खुद ढूँढ लेता है। अनुभव वडेसे वडा स्कूल है। कअी धन्धे अैसे हैं, जो स्कूलमें नहीं सीखे जाते, वल्कि अुन धन्धोंकी दुकानोंपर या कारखानोंमें सीखे जाते हैं। स्कूली ज्ञान अक्सर तोतेका-सा होता है। अिसलिअे वडी अुम्रवालोंके लिअे स्कूलके वजाय अिच्छाकी, लगनकी और आत्म-विश्वासकी जरूरत है।

वच्चोंकी शिक्षा माँ-वापका धर्म है। अैसा सोचें तो हमें वेशुमार पाठशालाओंकी अपेक्षा सच्ची शिक्षाका वायुमण्डल पैदा करनेकी ज्यादा जरूरत है। वह पैदा हुआ, फिर तो जहाँ पाठशाला चाहिये, वहाँ वह जरूर खडी हो जायगी।

आश्रमकी शिक्षा अिस दृष्टिसे होती है, और अिस दृष्टिसे सोचनेपर सफलता भी अेक हद तक अच्छी मिली है। आश्रमका हर विभाग अेक स्कूल है।

सत्याग्रह

आश्रमके अलग अलग मर्मोंका हाल ज्यादातर बताया जा चुका है। आश्रमकी हस्ती सत्यके आग्रहके जरिये सत्यकी खोज करनेके लिअे है। और अैसा आग्रह रखते हुअे जब सत्याग्रहका हथियार

११-७-'३२

अिस्तेमाल करना पड़ता है, तब आश्रम अुसका प्रयोग करता है, और अिस सत्याग्रहके नियमों और मर्यादाओंकी खोज करता है। यह चर्चा भी हो चुकी कि मामूली तौरपर नियम कैसे होने चाहियें।

मगर सत्याग्रहकी मर्यादा क्या है? अिस शस्त्रका तीव्र अुपयोग कब किया जा सकता है? जब मनुष्य हमेशा सत्यपर डटा रहता है, तो अुसका नाम भी सत्याग्रह है। यहाँ अिस सत्याग्रहकी चर्चा नहीं है चर्चा अुस सत्याग्रहकी है, जिसे नर हथियारके रूपमें दूसरेके प्रति अिस्तेमाल करता है।

अैसा सत्याग्रह साथियोंके विरुद्ध, सम्बन्धियोंके विरुद्ध, समाजके विरुद्ध, राज्यके विरुद्ध और दुनियाके विरुद्ध हो सकता है। अिसकी जड़में

[यह अितिहास अिसके आगे नहीं लिखा जा सका]

परिशिष्ट

[आश्रमकी नियमावलीमेंसे नीचेका हिस्सा दिया जाता है। अुसमें खयाल यही है कि वह व्रतनियमोंके पालनेवालेके कामका सावित होगा ।]

१. सत्य

सत्यका मतलव अितना ही नहीं कि रोजके व्यवहारमें असत्य न वोलना या असत्य आचरण नहीं करना। लेकिन सत्य ही परमेश्वर है और अुसके सिवा दूसरा कुछ नहीं। अिस सत्यकी खोज और पूजाके लिअे ही दूसरे सव नियमोंकी जरूरत रहती है और अुसीमेंसे वे पैदा होते हैं। ये सत्यके पुजारी अपने माने हुअे देशहितके लिअे भी कभी असत्य न वोलें, या अुसका आचरण न करें। सत्यके लिअे वे प्रह्लादकी तरह अपने मातपिता और वुजुर्गोकी आज्ञा भी विनयपूर्वक भंग करनेमें अपना धर्म समझें।

२. अहिंसा

अिस व्रतको पालनेके लिअे- अितना ही काफी नहीं कि प्राणियोंकी हत्या न की जाय। अहिंसाका अर्थ है छोटे छोटे जन्तुओंसे लेकर मनुष्य तक सव जीवोंको अेक नजरसे देखना। अिस व्रतका पालनेवाला घोर अन्यायीपर भी क्रोध न करे, लेकिन अुसपर प्रेम रखे, अुसका भला ही चाहे और करे। लेकिन प्रेम करते हुअे भी अुस अन्यायीके अन्यायसे दवे नहीं, वल्कि अुसका सामना करे और अैसा करनेमें वह अुसे जो भी तकलीफें दे, अुन्हें वडे धीरजके साथ और अुससे द्वेष किये विना सहे।

३. ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्यके पालनके बिना दूसरे व्रतोंका पालन नहीं हो सकता। अिसके लिअे सिर्फ अितना ही काफी नहीं है कि ब्रह्मचारी किसी स्त्री या पुरुषको बुरी नजरसे न देखे। लेकिन वह मनसे भी विषयोंका चिन्तन या भोग न करे। यदि वह विवाहित हो तो अपनी पत्नी या अपने पतिके साथ भी विषय भोग न करे, लेकिन अुसे अपना मित्र समझकर अुससे निर्मल सम्बन्ध रखे। अपनी पत्नी हो या दूसरी स्त्री हो, अपना पति हो या दूसरा पुरुष हो किसीके भी विकारमय स्पर्श, या वैसी बातचीत या फिर कोअी वैसी ही चेष्टासे भी स्थूल ब्रह्मचर्य टूटता है। यह विकारमय चेष्टा यदि पुरुष पुरुषके बीच ही हो या स्त्री स्त्रीके बीच ही हो या दोनोंकी किसी चीजके लिअे हो, तो भी स्थूल ब्रह्मचर्यका भंग होता है।

४. अस्वाद

जब तक मनुष्य जीभको वशमें न कर ले, तब तक ब्रह्मचर्यका पालन अुसके लिअे बड़ा कठिन है, ऐसा अनुभव होनेसे अस्वाद और अलग व्रत माना गया है। भोजन सिर्फ शरीरको जिन्दा रखनेके लिअे करना चाहिये, अुसका आनन्द लेनेके लिअे नहीं। अिसका मतलब यह कि अुसे दवाअी समझकर संयमके साथ खाना जरूरी है। अिस व्रतके पालनेवालेको विकार पैदा करनेवाले पदार्थ जैसे मसाले वगैराका त्याग करना चाहिये। मांस, शराब, तम्बाकू, भांग अित्यादि चीजोंके अिस्तेमालपर आश्रममें मनाही है। अिस व्रतमें स्वादके लिअे दावत करने या भोजनका आग्रह करनेकी भी मनाही है।

५. अस्तेय

अिस व्रतके लिअे अितना ही काफी नहीं है कि दूसरेकी चीज़ अुसकी बगैर अिजाजतके न ली जाय। जो चीज़ जिस कामके लिअे मिली हो, अुसके सिवा अुसे दूसरे काममें लेना, या जितने समयके लिअे मिली हो, अुससे ज्यादा समय तक अुसे काममें लेना भी चोरी है। अिस व्रतकी बुनियादमें तो यह सत्य है कि परमात्मा प्राणियोंके लिअे नित्यकी जरूरतकी चीजें ही हमेशा पैदा करता है और देता है। अुससे ज्यादा वह बिलकुल पैदा नहीं करता। अिसलिअे अपनी कमसे कम ज़रूरतकें अलावा मनुष्य जो कुछ भी लेता है, वह चोरी ही है।

६. अपरिग्रह

अपरिग्रह अस्तेयमें आ जाता है। जैसे गैरजरूरी चीज ली नहीं जा सकती, वैसे अुसका संग्रह भी नहीं किया जा सकता। अिसका मतलब यह है कि जिस अन्न या फर्निचरकी जरूरत न हो, अुसका संग्रह करना अिस व्रतका भंग करना है। जिसका कुर्सीके बगैर काम चल सकता है, अुसे कुर्सी रखनी ही न चाहिये। अपरिग्रहीको अपना जीवन हमेशा सादा बनाते रहना चाहिये।

७ खुदमेहनत

अस्तेय और अपरिग्रहके पालनके लिअे खुदमेहनतका नियम जरूरी है। फिर, सब मनुष्य जब अपनी जीविका अपनी मेहनतसे चलायें, तब ही वे समाजद्रोह और खुदके द्रोहसे बच सकते हैं। जिनका शरीर काम करता है और जो समझदार हो गये हैं, अैसे स्त्री पुरुषोंको अपना रोजका हो सकने जैसा काम खुद कर लेना चाहिये और दूसरेकी सेवा बिना कारण न लेनी चाहिये। लेकिन बच्चोंकी, दूसरे अपंगोंकी और बूढे स्त्री-पुरुषोंकी सेवाका

मौका आये, तो अुस वक्त सेवा करना हरअेक सामाजिक जिम्मेदारी समझनेवाले मनुष्यका धर्म है।

अिस आदर्शके आधारपर आश्रममें जब मजदूरोंके बिना काम चल ही न सकता हो तभी वे रखे जाते हैं। और अुनके साथ मालिक नौकरका सम्बन्ध नहीं रखा जाता।

८ स्वदेशी

मनुष्य सबसे बलवान प्राणी है। अिसलिअे जब वह अपने पड़ोसीकी सेवा करता है, तब जगतकी सेवा करता है। अिस भावनाका नाम स्वदेशी है। जो अपने पासकी सेवा छोड़कर दूरकी सेवा करनेके लिअे दौड़ता है, वह स्वदेशीका भंग करता है। अिस भावनाको मजबूत बनाया जाय, तो संसार सुव्यवस्थित बन सकता है। जब अिसे तोड़ा जाता है, तो अव्यवस्था पैदा होती है। अिस नियमके अनुसार जहाँ तक हमसे बन सके हमें अपने पड़ोसकी दुकानसे व्यवहार करना चाहिये। जो चीज अपने देशमें बनती हो या आसानीसे बन सकती हो, वह हमें परदेशसे नहीं मंगानी चाहिये। स्वदेशीमें स्वार्थका स्थान नहीं है। खुदको कुटुम्बके लिअे, कुटुम्बको शहरके लिअे, शहरको देशके लिअे तथा देशको जगतके कल्याणके लिअे कुर्बान हो जाना चाहिये।

९ अभय

सत्य, अहिंसा आदि व्रतोंका पालन निर्भयताके बिना नहीं हो सकता। आज चूँकि सब दूर भय समाया हुआ है, अिसलिअे निर्भयताका चिन्तन करना और अुसकी तालीम देना बहुत जरूरी है, और अिसीलिअे अुसे व्रतोंमें जगह दी गयी है। जो सत्यपरायण रहना चाहते हैं, वे न जातपाँतसे डरें, न सरकारसे डरें, न चोरसे डरें, न गरीबीसे डरें, न मौतसे डरें।

१०. अस्पृश्यता निवारण

हिन्दू धर्ममें छूतछातने जड पकड़ ली है। छूतछातमें धर्म नहीं बल्कि अधर्म है, यह समझकर अुसे मिटानेके कामको नियमोंमें शुमार किया गया है। अछूत माने जानेवालोंके लिअे आश्रममें दूसरी जातियोंके बराबर ही स्थान है।

आश्रम जातपाँत नहीं मानता। अुसका खयाल है कि जात-पाँतसे हिन्दू धर्मको नुकसान हुआ है। अुसमें रहनेवाली छुआछूत और अूँचनीचकी भावना अहिंसा धर्मको नुकसान पहुँचानेवाली है। आश्रम वर्णाश्रम धर्मको मानता है। लेकिन यह मालूम होता है कि वह वर्णव्यवस्था सिर्फ धन्धेके सम्बन्धमें है, यानी जो वर्णनीतिको पालता है, अुसे अपने माँबापके धन्धेमेंसे रोजी पैदा करके बाकीका समय ज्ञान प्राप्त करने और अुसे बढ़ानेमे खर्च करना चाहिये। स्मृतियोंमें मानी हुअी वर्णव्यवस्था जगतका भला करनेवाली है। लेकिन वर्णाश्रम धर्म मान्य होनेपर भी आश्रमका जीवन तो गीताके माने हुअे व्यापक और भावना प्रधान सन्यास धर्मके आदर्शपर रचा हुआ है। अिसलिअे अुसमें वर्णकी गुंजायश नहीं है।

११. सहिष्णुता

आश्रमकी यह मान्यता है कि संसारमें जितने भी चालू और मशहूर धर्म हैं, वे सब सत्यको जाहिर करते हैं। लेकिन चूँकि वे सब अपूर्ण मनुष्य द्वारा व्यक्त हुअे हैं, अिसलिअे अुन सबमें असत्यका भी मिश्रण हो गया है। अिसका मतलब यह कि हममें जितना अपने धर्मके लिअे मान हो, अुतना ही मान दूसरोंके धर्मोंके लिअे भी होना चाहिये। जहाँ अैसी सहिष्णुता हो, वहाँ न अेक दूसरेके धर्मका विरोध पैदा होता है, न दूसरे धर्मवालेको अपने धर्ममें लानेकी कोशिश की जाती है। लेकिन यह प्रार्थना की जाती है कि जो जो दोष सब धर्मोंमें हों, वे सब दूर हों। और अिस भावनाको हमेशा मजबूत करना जरूरी है।

टिप्पणी

१ (पृ० ३) गांधीजी दक्षिण अफ्रीकामें अेक बार नेटाल जा रहे थे। अुस वक्त अुनके मित्र पोलकने गाड़ीमें वक्त गुजारनेके लिअे अुन्हें अेक अंग्रेज लेखक जान रस्किनका 'अन्टु दिस लास्ट' पढ़नेको दिया। पढ़ते ही वे विचार गांधीजीको अितने रुचे कि अुन्होंने अुनके अनुसार जीवन बना लेनेका निश्चय कर लिया। अिस परसे फिनिक्सकी स्थापना हुअी और अुनके जीवनमें परिवर्तन हुआ। बादमें गांधीजीने 'अिण्डियन ओपिनियन' में सर्वोदयके नामसे अिस पुस्तकका सार प्रकाशित किया। अब यह पुस्तकके रूपमें भी प्रकाशित हो चुका है।

२ (पृ० ४) देखिये आत्मकथा भाग ४ प्रकरण १९, पृ० ३८९।

३ (पृ० ४) हरमान कॅलनबॅक जर्मन यहूदी थे और दक्षिण अफ्रीकामें मकान वगैरा बँधवानेवाले अिन्जिनियर थे। खुद अकेले होनेपर भी मकान किरायेके अलावा रु० १२०० हर मास खर्च करते थे। जब गांधीजीके साथ अिनकी मित्रता हुअी, तो अुन्हें सादगीका शौक लगा। और अुन्होंने खर्चको १२०० रु०से घटाकर १२० रु० कर दिया। वे गांधीजीको हर तरहके प्रयोगोंमें साथ देते थे। वे अुनके अेक कीमती साथी बनकर रहे थे। अेक बार जेल भी हो आये थे। गांधीजीके हिन्दुस्तानमें आनेके बाद ये हिन्दुस्तान भी आनेवाले थे। लेकिन पहला विश्वयुद्ध शुरू हो गया और चूंकि ये जर्मन थे अिसलिअे अुन्हें युद्धकैदी बना लिया गया। अिस तरह वे हिन्दुस्तान नहीं आ सके। बादमें अभी अभी वे १९३७ में हिन्दुस्तान आये थे।

"शुक्रवारसे प्रार्थना क्यों शुरू हुआी, यह प्रश्न पैदा होना सम्भव है। अिसका कारण अितना ही है कि काफी समय लेकर पारायण चौदह दिनोंमें होता था। यरवदा जेलमें मुझे सात दिनमें पारायण करनेका विचार आया और अुसपर अेक शुक्रवारको अमल हुआ। अिसलिअे और तबसे पारायण-सप्ताह शुक्रवारसे शुरु होता है।"

"पारायणकी बात यहाँ दो कारणोंसे कही गयी है। अेक तो यह बतलाना कि गीताभक्ति हममेंसे कितनोंको कहाँ तक ले गयी है, और दूसरा, पढ़नेवालेको अभ्यासके लिअे अुत्साह बढ़ानेका रास्ता बतलाना।" (२४-९-३६)

७ (पृ० ४०) यह भाग भी लिखा नहीं गया।

८. (पृ० ५८) 'आत्मकथा' भाग ५, प्रकरण ४०, पृ० ५६९।